

करुणा की कहानियां

[भारतीय इतिहास की छ नाट्यिक गाथाएँ]

ठा० राजबहादुरसिंह

राजपाल एण्ड सन्ज, दिल्ली



गांधी स्मारक निधि, राजघाट, नई दिल्ली-२
के सहयोग से
राजपाल एण्ड सन्स, कश्मीरी गेट, दिल्ली-६
द्वारा प्रकाशित

© गांधी स्मारक निधि

प्रथम संस्करण मई, १९६७

मूल्य एक रुपया

वक्तव्य

अबबर इलाहाबादी न उठू म कविता लिखी थी—

‘बुद्धू मिया भी हजरत-गाधी क साथ है ।

गो खाक मुन है मगर आधी के साथ है ॥’

इसका अर्थ है कि आम आत्मी भी महात्मा गाधी के रास्त पर चलन का आनुर है, यद्यपि स्वयं उसकी अपनी शक्ति सीमित है परन्तु एक आन्दोलन के वायुमंडल में वह भी बड़े-बड़े त्याग करने की सामर्थ्य पा गया है। यह गाधी का आधी जा भारत न देखी और जिसमें मारा समार प्रभावित हुआ, वह भी सामान्य व्यक्ति की त्याग सामर्थ्य का बढानवाला वातावरण की पावनता। दंग की आजादी के लिए सबके मन में तड़पन पदा हा गई थी, पर गाधीजी ने एक ऐसा रास्ता मुन्नाया जिसमें हर नागरिक अपना योगदान दे सके। अहिंसा का जो सम्ना था वह घाटे नताया का पदा करने की बजाय आम जनता को ऊपर उठान का रास्ता था, और उसमें करोड़ों में चलना आइ और लाखा न उमम अपन त्याग का उदाहरण रखा।

पर आई आजादी। गाधी का एहिक जीवन समाप्त हुआ। सत्ता और संपत्ति का मनातन होइ म शान की शक्ति पर आधारित जनक्रांति के रास्त से काफिला दूगरे तरफ मुड गया और ऐसा लगा कि गाधी की आधी धम गई। आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक जीवन में जा भा परिवर्तन लान हैं उनको केवल राज्य-सत्ता क आधार पर साना सम्भव नहीं—यह मुन्ना दिया गया और लोकशक्ति का जा जागरण गाधी-युग म हुआ था और जो आजादी क बाद आगे बढना था वह न बना। त्याग के स्थान पर सत्ता और लोक के स्थान पर राज्यशक्ति क अधिक जोर दन स जा नतीजे आए हैं के सामने हैं।

पर क्या जो सांस्कृतिक चेतना के तत्त्व गांधीजी न प्रतिपादित किए वे भुलाए जा सकते हैं ? भारत में उनपर एक हलका परदा छा गया है, पर सभार म, सभी देशों में, तत्त्ववेत्ता उत्तरोत्तर अनुभव कर रहे हैं कि हिंसा की पराकाष्ठा के इस युग में अहिंसा की शक्ति का विकास ही उसका दामन बन सकेगा और इसके लिए गांधी इस युग में एक दीपस्तम्भ हैं। यह पुस्तक तथा अन्य दो पुस्तकें^१ गांधी विचार के पोषण में गांधी जन्म शताब्दी (१९६९) के उपलक्ष्य में गांधी स्मारक निधि ने तैयार कराई हैं तथा राजपाल एण्ड सन्स की ओर से प्रकाशित हो रही हैं। हम पूर्ण आशा है कि जवानों में सादी, विचारों में सहजगम्य तथा कट्टरता से परे और मौलिक तथा रोचक रूप में लिखी, विद्वान लेखकों की ये पुस्तकें अपने उद्देश्य में सफल होंगी, और निधि की लोक-जागरण की यह आशा पूरी करेंगी कि—

बूद-बूद से सागर भरती, नदी-नदी से सागर।

किरन झकड़ा हुई कि हाता माग जगत उजागर ॥

गांधी स्मारक निधि
राजघाट
नई दिल्ली-१

देवेन्द्र कुमार गुप्त

(देवेन्द्र कुमार गुप्त)

मंत्री

१. सौ साल एक जवान प्रभाकर भावने, मूल्य एक रुपया। भारत एक है
मीताचरण दीक्षित, मूल्य एक रुपया।

पुस्तक के सम्बन्ध में

'करुणा की कहानियाँ' में मैंने भारतीय इतिहास की छ कर्ण कथाएँ दी हैं जिन्हें पढ़कर मन में गुद एव उदात्त भावनाओं का संचार होता है।

आरभ मैंने धार्मिक त्रान्ति के युग से किया है, क्योंकि इसी युग से कर्णा अपने निविड रूप में देखने को मिलती है।

मुझे कर्णा का प्रभाव महावीर के जीवन पर, विशेष रूप में, दिखाई दिया और उनके बाद बुद्ध, अशोक और गांधी के। इन सबके और भी कितने ही समकालीन कर्णा के प्रवाह में बहे हैं जिन्हें इस संग्रह में स्थायी दिया गया है। भारतीय जीवन को चमत्कृत और आत्म विभोर करनेवाले ऐसे पात्रों में महावीर, बुद्ध और गांधी के साथ कुणाल, अशोक और कुण्डलकेगा को भी जोड़ दिया गया है क्योंकि इनकी जीवन-गाथाएँ उसी कर्णोत्पादक तत्त्व से सन्निहित हैं।

ये कहानियाँ यूनानिक रूप में परम्परागत और लोकविद्युत रूप में ही बनी गई हैं—कम से कम कथावस्तु की दृष्टि से उनमें कोई भिन्नता नहीं साई गई—हा, अभिव्यक्ति की गली और भाषा के रूप में कथित रूपान्तर दृष्टिगत हो सकता है। जहाँ तक गांधीजी के कर्ण जीवन प्रसंगों का प्रश्न है, वे उनके अपने ही गन्धों में वर्णित हैं, अतः लेखक को इसका कोई ध्येय नहीं मिल सकता—हा, ठीक पग न कर पाने के कारण वह लाधना का पात्र अवश्य ही सकता है।

पाठक, इन कहानियों को पढ़कर स्वयं निणय करें।

गांधी स्मारक निधि
६, राजघाट, नई दिल्ली-१

—रामचन्द्रादुरसिंह

क्रम

वरुणा प्रसारक	
महावीर	६
वरुणा प्रेरक	
बुद्ध	१६
वरुणा प्रचारक	
अशोक	२६
वरुणा पात्र	
कुणाल	३७
वरुणा पात्री	
कुण्डलकेशा	६३
वरुणा निधि	
गाची	७१

महावीर

महावीर

ढाई हजार वर्ष से भी पहले की बात है, जब सारा देश धर्म-चरण के थोथे ढकोसलो में बंधकर समार और जीवन के वास्तविक सत्य को भूल बठा था और पशुओं की हिंसा, मिथ्या आचरण तथा स्वाय-साधन का बोलबाला हो चला था, वैशाली के एक राजघराने में ऐमा बालक पैदा हुआ जो अवस्था में अपने बड़े भाई से छोटा हों पर भी ऐमा होनहार, चुलबुला, सजग और विचारशील दिखाई देने लगा कि उसे देखकर सभी लोग आश्चर्य में पड़ गए।

उस बालक ने जब कुछ होश सन्हाला तो देखा कि उस युग का समाज धार्मिक और सामाजिक अज्ञान से घिरा हुआ है। धर्म के नाम पर पशुओं की हत्या और शिक्षाहीन नारी जाति का अपमान उस वीर नवयुवक को अच्छा नहीं लगा। उसने सबसे पहले स्वयं को उस काल की अस्पष्ट भ्रमात्मक मान्यताओं के मूल तत्व पहचानने का प्रयत्न किया और तपस्या और ज्ञान प्रप्ति के द्वारा अपने-आपको इस योग्य बना लिया जिसमें वह दृढतापूर्वक अपने विचारों का प्रतिपादन कर सके।

इस बालक का जन्म मगध के क्षत्रियकुण्ड ग्राम में हुआ था

जो आजकल गया ज़िले में है। उस स्थान पर आजकल लखवाड नाम का ग्राम बसा हुआ है।

बालक ज्यो ज्यो बड़ा होने लगा, उसके एकान्त चिन्तन और जीवन पद्धति को देखकर लोग उसके बारे में चिन्ता करने लगे।

किन्तु जब वह बालक से युवक हो गया और अपने विद्या-बल एवं जीवन पद्धति से जनप्रिय बनकर राज्य सिंहासन पर बैठने योग्य बना तो उसकी अवस्था २८ वर्ष की हो चुकी थी और तब तक उसके माँ बाप इस सत्तार से विदा ले चुके थे। इस अवस्था में, जब उसकी अवस्था सत्तार में प्रवेश करके उसमें लिप्त होने की हो रही थी, उसे जैसे किसीने झपटकर सोते से जगा दिया।

लोगों ने उस महावीर से उसकी असाधारण योग्यता को देखते राज्य सिंहासन पर बैठने को कहा, किन्तु उसने सोचा कि वह राज्य के धमेलों में पड़ गया तो जीवन में जिस माँग का अनुमरण करना चाहता है वह कठिन हो जाएगा। राज्य शासन द्वारा जनता का हृदय परिवर्तन उसे सम्भव नहीं प्रतीत हुआ, इसलिए उसने राज्य भार अपने भाई आदीवर्द्धन के कंधों पर डाल दिया और स्वयं घर-बार से अलग हो गया। क्षत्रियकुण्ड छोड़ने के पहले महावीर ने अपने भाई भोजाई की अनुमति से गरीबों को काफी धन राज्य-कोष से बाँटा। भाई तथा भाभी से विदा ले वह वन की ओर गया और वहाँ तपस्या तथा एकान्त चिन्तन द्वारा अपनी आध्यात्मिक शक्ति बढ़ाने में लग गया। मगध छोड़ने के पश्चात् उसने विश्वमात्र को अपना कुटुम्ब बना लिया।

जैसे तो महावीर को अपने घर और राज्य में रहते हुए ही तत्कालीन जनता की घोर दुदशा की जानकारी थी—चारों ओर फैली समाज की दुदशा के कारण पशु-पक्षी की ही नहीं, कटु, अप्रिय और असद्व्यवहार के द्वारा मनुष्यों की भी हत्या हो रही थी। अपने आहार के लिए ही नहीं, धम-साधन और मुक्ति के लिए यज्ञ में निरीह पशुआ की हत्या, महावीर के लिए ऐसी करुणा का दृश्य मिट्ट हुई कि उन्होंने उनके उमूलन का प्रण कर लिया। तपस्या और चिन्तन से उनके विचारों में जोर भी निखा आ गया था और उन्होंने अब और भी स्पष्ट रूप में देख लिया था कि राज्य-शासन और धम शासन दोनों का ध्येय है जनता को समाग पर लाना। किन्तु राज्य-शासन के अधिनायक तो स्वयं ही माया-मोह में ग्रस्त प्राणी होते हैं इसलिए वे समाज-सुधार के कार्य में सफल नहीं हो सकते, क्योंकि जो जिस चीज को अपने ही हृदय-तल में से नहीं निकाल सकता, वह लाखों-करोड़ों लोगों के मन से कैसे मिटा सकता है। उन्होंने अनुभव किया कि राज्य-शासन की बुनियाद प्रेम, स्नेह और सद्भाव पर नहीं, भय, आतंक और दमन पर रखी जाती है। यही कारण है कि राज्य-शासन लोकहित की कोई स्थायी व्यवस्था नहीं कर पाता।

इस विचार के परिणामस्वरूप तपस्यारत युवक महावीर इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि मानव-कल्याण की प्राप्ति राज्य शासन द्वारा नहीं, सुधार और आन्दोलन द्वारा, लोक-हृदय और लोक-मत बदल देने में हो सकती है और इसके लिए तैयारी करने में उन्हें और भी तपस्या, चिन्तन और लोकमग्रह करना होगा। भले ही उन्हें सारा जीवन उत्सर्ग कर देना पड़े, अपने को प्रजा के,

अपने तपस्या-मार्ग में विचलित नहीं हुए तो उसने उन्हें प्रलोभन में डालने का प्रयत्न किया। किन्तु जब वे उसकी लपट में भी नहीं आए तो सगम ने नई-नई यंत्रणाएँ और माया-मोह के बंधन प्रस्तुत किए। इस तरह लगातार छह महीने यह क्रम चला, पर महावीर अपने पथ से नहीं हिले तो परीक्षक सगम का धैर्य टूट गया और उसने अपना परिचय देते हुए भगवान महावीर से कहा—“भगवन्, क्षमा करे—मैंने आपको बहुत कष्ट दिया और प्रलोभन भी दिए, पर आप किसीसे विचलित नहीं हुए। मैंने आपके आराम और चिंतन में बाधा डाली। परन्तु अब मैं जा रहा हूँ, अब आपको कोई कष्ट नहीं होगा।”

सगम की इन बातों से भगवान महावीर की आँतें छलछला आईं।

सगम ने पूछ लिया—“महाराज, क्या आपका अब भी किसी कष्ट की आशंका है?”

“हां सगम, भयकर कष्ट की।”

‘किस प्रकार के कष्ट की? मुझे बताइए—मैं उसका निराकरण करूँगा।’

“सगम, तुम क्या निराकरण करोगे? क्या वह तुम्हारे बस की बात है?”

“मुझे मालूम तो हाँ भगवन्! शायद वह भी मेरे बस की हो।”

“सगम, क्या तुम समझते हो कि मैं अपने कष्ट की बात कह रहा हूँ?”

“तो फिर महाराज?”

"नही बल्कि, बात ऐसी नहीं है। मैं अपने कष्ट से तो कभी ध्वरता ही नहीं। मैं तो कष्ट से अधिक सब जानता हूँ। यह कष्ट तो और तरह का है सगम।"

"मुझे बताइए प्रभु, वह कौन-सा कष्ट है। शायद मैं उसे दूर करने में सहायक हो सकूँ।"

"वह यह है साम, कि तुम अनजान की वशा में मुझे जो कष्ट पहुँचाएँ, उनका नविष्य मैं क्या फल हूँगा? जब मैं तुम्हारे इस अचकारपूर्ण नविष्य की कल्पना करता हूँ तो मैं कांप उठता हूँ—मुझे रोमांच हो जाता है। एक अज्ञान आत्मा मेरे कारण कितनी यातना भोगेगी, कितनी कष्ट पाएगी, यह सोचकर मुझे घोर कष्ट हो रहा है। जैसे भी हो सके, तुम्हें शान्ति प्राप्त हो, यही मेरी आकांक्षा है।"

भगवान् महावीर की करुणा की यह हिंजोर देखकर सगम दग रह गया। उनके नेत्रों में आमुला की धारा बह रही थी। इस प्रवाह में सगम की कठोरता और तब बह गया। वह उनके चरणों पर गिर पड़ा और उसके नेत्रों से नीचे आँसू बह चले। मित्र शत्रु का भेद वहाँ समाप्त हो चुका था। जिस संसार के अज्ञ लोग शत्रु या विरोधी समझते, वह करुणा का पात्र बनकर उनका विषय बन गया।

बुद्ध

कोसन के महाराज शुद्धोदन गोक्यवश के विचारशील शासक थे। उन्होंने अपनी परम्परा की शिक्षा अपने पुत्र गौतम को देने की पूरी व्यवस्था कर ली थी। नवयुवक गौतम सभी राजोचित विद्याओं में कुशल बन चुके थे। राजसी ठाट-बाट और सिर पर पिता की छत्रच्छाया—सुख-सन्तोष के सभी साधन तैयार रहते थे। विवाह तो हो ही चुका था—एक शिशु ने जन्म लेकर जैसे उनकी परम्परा की जज्जीर की कढ़ी तैयार कर दी थी। किन्तु यह सब होने हुए भी गौतम का मन मासार्थिक सुखों और साधन सुविधाओं में जकड़ता नहीं था—जैसे उनका सुखी जीवन कभी-कभी मन में किसी अभाय का अनुभव करता और कोई बात खटका करती।

महाराज शुद्धोदन ने ऐसे निपुण सेवक नियुक्त कर रखे थे जो राजकुमार की सेवा में सदैव तत्पर रहते। उनका चतुर सारथि उन्हें घुमाने-फिराने और मन-बहलाव के लिए रथ में बाहर ले जाया करता। राजकुमार का प्रवृत्ति की मनोरम छटा—बाग-बगीचे देखने का बड़ा चाव था।

एक दिन की बात है, युवराज गौतम उद्यान की सैर के लिए रथ में बाहर जा रहे थे। रास्ते में उन्होंने देखा, एक आदमी

वमर व बल थुका बड़ी कठिनाई में रास्ता चर रहा था। राज कुमार ने सकेत से गाड़ी रूकवाई और सारथि से पूछा—
'सारथि मित्र, यह आदमी इस तरह क्यों चल रहा है?'

सारथि ने कहा—“महाराजकुमार, यह वृद्ध है।”

महाराजकुमार न फिर पूछा—“भला वृद्ध का क्या मतलब है सारथि?”

सारथि ने कहा—“वृद्ध वह है जिसका शरीर उम्र बढ़ जाने से काम नहीं देता—इसे अब अधिक दिन नहीं जीना है।”

महाराजकुमार—ता साथी, क्या एक दिन मेरी भी यही हालत हो जाएगी?

सारथि—हम सभीकी हालत एक दिन ऐसी ही होने वाली है। शरीर कायम रहा तो बुढ़ापा तो आकर ही रहेगा।

“ता फिर गाड़ी अन्त पुर को लौटा ने चलो—मुझे उद्यान में नहीं जाना है।” राजकुमार ने कहा।

“जा आज्ञा।” वहकर सारथि ने रथ अन्त पुर की ओर मोड़ लिया।

अन्त पुर में आकर राजकुमार शाकपूर्ण विचार में डूब गए और सोचने लगे कि इस जीवन का धिक्कार है जिसके कारण वृद्धावस्था आती है और मनुष्य का जीवन ऐसा दुःखी हो जाता है कि चलना फिरना तक कठिन हो जाता है।

उधर राजा शुद्धोदन ने सारथि को बुलाकर पूछा—“क्या राजकुमार बागीचा देखकर खुश हुए?”

सारथि ने कहा—“महाराज, खुश क्या होते, हम तो रास्ते से ही लौट आए। एक वृद्धे की बुरी हालत देखकर राज

कुमार का मन दुःखी हा गया और वे अन्त पुर को लौट आए ।”

महाराज शुद्धोदन के आदेश से राजकुमार गौतम का मन लगाने के लिए और भी तरह-तरह के राग-गग किए गए । खेल-क्रीडा, नृत्य सगीत और सभी तरह के इन्द्रिय-सुख के साधन बढा दिए गए । राजकुमार का मन उत सुखा में मग्न हो गया और वे उनमें ऐसे लीन हुए कि कुछ दिना तक उन्होंने कही बाहर जाने, प्राकृतिक दृश्य देखने आदिका नाम भी नहीं लिया ।

कुछ समय बाद जब राजकुमार का मन फिर उद्यान देखने के लिए जाने को हुआ तो सारथि रथ लाया और इस बार दूसरे रास्ते से उस दिशा को ले जाने लगा । कुछ दूर जाने पर राजकुमार ने देखा, रास्ते में कोई रोगी ऐसी गहरी बीमारी में ग्रस्त होकर पडा है कि उसे अपने मल-मूत्र में लोटन से लोग मुश्किल से अलग कर रहे हैं, और उसे ठीक से वस्त्र आदि पहना रहे हैं ।

उसका यह हाल देखकर राजकुमार ने सारथि से पूछा—
“इसे क्या हा गया है ? इसकी आत्त कौसी हो गई है ? गले से आवाज क्यों नहीं निकल रही है ?”

सारथि ने कहा—“यह रोगी है महाराज ।”

महाराजकुमार ने फिर पूछा—“रोगी का क्या मतलब ?”

सारथि—रोगी का मतलब यह कि इसका शरीर अपने दाबू में नहीं है । यह तद्गुम्स्त आदमिया जैसा व्यवहार नहीं कर सकता ।

राजकुमार—तो भना मित्र सारथि । यह तो बताओ । क्या मेरा शरीर भी इसी प्रकार बेकार और भार-सा बन सकता है ?

“क्यों नहीं महाराजकुमार—सभी मनुष्य रोगग्रस्त हो सकते हैं—ससार में राजा, रथ, फकीर सभी व्याधिघर्षी हैं।”

राजकुमार—तो फिर मुझे वाटिका देखने नहीं चलना है—रथ अन्त पुर की ओर लौटा ले चलो मारथि ।

मारथि ने आज्ञा का पालन किया ।

राजकुमार शरीर के रोगग्रस्त हान की बात से और भी गोकपूण विचारा में तल्लीन हो गए और अन्त में इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि इस तरह रोगग्रस्त हानेवाले के जन्म और जीवन को धिक्कार है जिससे मनुष्य इतना पीडाग्रस्त हो जाता है ।

मारथि से राजा शुद्धादन को फिर मालूम हुआ कि राजकुमार बीमार की अवस्था देखकर सासारिक जीवन के कष्ट से घबड़ा गए हैं, ता उन्होंने उनका मन ससार में रमाने के लिए और भी सुखद और सुविधाजनक उपाय कर दिए ।

इस प्रकार कुछ काल और बीता और राजकुमार उस बात को भूल-भे गए ।

कुछ समय के बाद एक दिन राजकुमार को उद्यान देखने की याद फिर आई ता उन्होंने मारथि को बुलाकर रथ तैयार करने को कहा ।

इस बार मारथि एक तीसरे ही रास्ते से उद्यान की ओर जान लगा, पर रथ नगर से अधिक दूर नहीं जा पाया था कि रास्ते में बहुत-से लोग की भीड़ दिखाई दी जा रग-बिरंगे वस्त्रों से सजाकर एक पालकी-में तैयार कर रहे थे । राजकुमार ने यह दृश्य देखा ता मारथि से पूछा—“ये लोग यह क्या चीज तैयार कर रहे हैं मारथि ?”

सारथि ने कहा—“महाराजकुमार, यह एक मृत मनुष्य की अर्धी है।”

‘ता फिर मेरा रथ उसके निजट ले चलो।’ राजकुमार ने कहा।

सारथि आनानुसार रथ उधर ले गया। मुर्दे को पास स देखकर राजकुमार न पूछा—‘मारथि, मृत का अर्थ क्या होता है?’

मारथि बोला—“मृत का जय यह हाता है कि अब यह मनुष्य अपन माता पिता और रिश्ते नातेवालो को दिखाई नहीं दगा। न वही किमीको दग पाएगा।”

राजकुमार—तो क्या मेरो भी यही गति होगी? क्या मैं भी राजा रानी, सगे सम्बन्धियो को नहीं दिखाई दूगा और मैं उह नहीं देख सकूंगा?

सारथि न कहा—“नही महाराज! यही तो मौत है। यह सभीके लिए एक मी है। अन्त मे सभीकी यही गति होनेवाली है।”

“ता फिर अवे उद्यान मे नही चलता है मारथि—रथ अन्त - पुर को वापस न चलो।”

सारथि न रथ वापस मोड लिया और महाराजकुमार का अन्त पुर वापस ले गया। महागजकुमार वहा बडी ही शोकपूर्ण अवस्था मे दर तक बचैन पड रहे और अन्तत उन्हाने कहा—
“इस जन्म और जीवन को विक्रार है जिससे मनुष्य बुढापा, व्याधि और मौत को प्राप्त होता है।”

जय राजा शुद्धोदन ने पहले ही की तरह इस बार राज-

“क्यों नहीं महाराजकुमार—मभी मनुष्य रोगग्रस्त हो सकते हैं—ससार में राजा, रथ, फकीर सभी व्याधिघर्मी हैं।”

राजकुमार—ता फिर मुझे घाटिका देखन नहीं चलना है—रथ अन्त पुर की ओर लौटा ले चलो मारथि ।

सारथि न आज्ञा का पालन किया ।

राजकुमार शरीर के रोगग्रस्त होने की बात से और भी शोकपूर्ण विचारा में तन्लीन हो गए और अन्त में इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि इस तरह रोगग्रस्त होनेवाले के जन्म और जीवन को विकार है जिसमें मनुष्य इतना पीड़ाग्रस्त हो जाता है ।

सारथि से राजा शुद्धादन को फिर मालूम हुआ कि राजकुमार बीमार की अवस्था देखकर सासारिक जीवन का कष्ट से घबड़ा गए हैं, ता उन्होंने उनका मन ससार में रमाने के लिए और भी सुखद और सुविधाजनक उपाय कर दिए ।

इस प्रकार कुछ काल और बीता और राजकुमार उस बात को भूल-से गए ।

कुछ समय के बाद एक दिन राजकुमार को उद्यान देखने की याद फिर आई ता उन्होंने सारथि को बुलाकर रथ तैयार करने को कहा ।

इस बार सारथि एक तीसरे ही गन्ते से उद्यान की ओर जाने लगा, पर रथ नगर से अधिक दूर नहीं जा पाया था कि रास्ते में बहुत-से लोग की भीड़ दिखाई दी जो रथ प्रिरग वस्त्रों से सजानर एक पालनी-सी तैयार कर रहे थे । राजकुमार ने यह दृश्य देखा ता सारथि से पूछा—“ये लोग यह क्या चीज तैयार कर रहे हैं सारथि ?”

सारथि ने कहा—“महाराजकुमार, यह एक मृत मनुष्य की अर्थी है।”

“तो फिर मेरा रथ उसके निकट ले चलो।” राजकुमार ने कहा।

सारथि आनानुसार रथ उधर ले गया। मुर्दे को पास से देखकर राजकुमार ने पूछा—‘सारथि, मृत का अर्थ क्या होता है?’

मारथि बोला—“मृत का अर्थ यह होता है कि अब यह मनुष्य अपने माता पिता और रिश्ते नातेवालों को दिखाई नहीं देगा। न वही किसीको देख पाएगा।”

राजकुमार—तो क्या मेरी भी यही गति होगी? क्या मैं भी राजा रानी, सगे सम्बन्धियों को नहीं दिखाई दूंगा और मैं उन्हें नहीं देख सकूंगा?

सारथि ने कहा—“नहीं महाराज। यही तो मौत है। यह सभीके लिए एक सी है। अन्त में सभीकी यही गति होनेवाली है।”

“तो फिर अत्रे उद्यान में नहीं चलना है सारथि—रथ अन्त-पुर की वापस ले चलो।”

सारथि ने रथ वापस मोड़ लिया और महाराजकुमार को अन्त पुर वापस ले गया। महाराजकुमार वहाँ बड़ी ही शोकपूर्ण अवस्था में देर तक बचन पढ़ रहे और अन्ततः उन्होंने कहा—“इस जन्म और जीवन को विकार है जिससे मनुष्य बुढ़ापा, व्याधि और मौत को प्राप्त होता है।”

जब राजा शुद्धोदन ने पहले ही की तरह इस बार राज-

“क्यों नहीं महाराजकुमार—सभी मनुष्य रोगग्रस्त हो सकते हैं—ससार में राजा, रक्ष, फकीर सभी व्याधिघर्मी हैं।”

राजकुमार—तो फिर मुझे वाटिका देखने नहीं चलना है—रथ अंत पुर की ओर लौटा ले चलो सारथि ।

सारथि ने आज्ञा का पालन किया ।

राजकुमार शरीर के रागग्रस्त होने की बात से और भी शोकपूर्ण विचारा में तल्लीन हो गए और अन्त में इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि इस तरह रागग्रस्त होनेवाले के जन्म और जीवन को विनाश है जिससे मनुष्य इतना पीडाग्रस्त हो जाता है ।

सारथि से राजा श्रुद्धादन को फिर मालूम हुआ कि राजकुमार बीमार की अवस्था देखकर सासारिक जीवन के कष्ट से घबरा गए हैं, ता उन्होंने उनका मन ससार में रमाने के लिए और भी सुखद और सुविधाजनक उपाय कर दिए ।

इस प्रकार कुछ काल और बीता और राजकुमार उस बात को भूल-से गए ।

कुछ समय के बाद एक दिन राजकुमार को उद्यान देखने की याद फिर आई ता उन्होंने सारथि को बुलाने रथ तयार करने को कहा ।

इस बार सारथि एक तीसरे ही रास्ते से उद्यान की ओर जाने लगा, पर रथ नगर से अधिक दूर नहीं जा पाया था कि रास्ते में बहुत-से लागा की भीड़ दिखाई दी जो रथ चिरगै वस्त्रों से सजाकर एक पालकी-सी तैयार कर रहे थे । राजकुमार ने यह दृश्य देखा तो सारथि से पूछा—“ये लोग यह क्या चीज तयार कर रहे हैं सारथि ?”

सारथि ने कहा—“महाराजकुमार, यह एक मृत मनुष्य की बर्था है।”

‘तो फिर मेरा रथ उसके निकट ले चला।’ राजकुमार ने कहा।

सारथि आनानुसार रथ उधर ले गया। मुर्दे को पास में देखकर राजकुमार न पूछा—‘सारथि, मृत का अर्थ क्या होता है?’

मारथि वाला—“मृत का अर्थ यह होता है कि अब यह मनुष्य अपने माता पिता और रिश्ते नातवालों को दिखाई नहीं देगा। न वही किसीको देख पाएगा।”

राजकुमार—तो क्या मेरी भी यही गति होगी? क्या मैं भी राजा रानी, सगे सम्बन्धियों को नहीं दिखाई दूंगा और मैं उन्हें नहीं देख सकूंगा?

सारथि ने कहा—“नहीं महाराज! यही तो मौत है। यह सभीके लिए एक सी है। अन्त में सभीको यही गति होनेवाली है।”

“तो फिर अबे उद्यान में नहीं चलना है सारथि—रथ अन्त-पुर को वापस ले चलो।”

सारथि ने रथ वापस मोड़ लिया और महाराजकुमार का अन्त पुर वापस ले गया। महाराजकुमार वहाँ बड़ी ही शावपूर्ण अवस्था में देर तक बेचन पड़ रहे और अन्तत उहाने कहा—“इस जन्म और जीवन को धिक्कार है जिसमें मनुष्य बुढ़ापा, व्याधि और मौत को प्राप्त होता है।”

जब राजा शुद्धोदन ने पहने ही की तरह इस बार राज-

मातृत्व के बोध से मुबत और हल्की होकर गहरी नींद में निमग्न है । इसे आहट नहीं मिलनी चाहिए, नहीं तो बनी-बनाई वान विगड जाएगी । मुझे यहा अबिक देर नहीं रुकना चाहिए ।



वस्त्र बदल लेना चाहिए । परन्तु हैं । यहा वस्त्रागार में तो सामान्य वस्त्र है ही नहीं । चलो वही किसी गरीब के फटे-पुराने वस्त्र से बदल लेंगे । परन्तु यह बात तो प्रातः सूर्योदय के बाद ही हो सकती है । तब तक इतनी तेजी से चलना चाहिए कि पिताजी सुबह आसपास खाज कराए तो उन्हें कोई पता न चले । अंधेरी रात में पूव के राजपथ पर बढ़ते चलना ही ठीक होगा । पीछे पी पीटने के बाद मुख्य मार्ग छोड़कर देहात के उन लोगों में जा पहुँचना होगा जिनकी सेवा से ही ससार के सभी दुःखों से त्राण मिल सकता है और जिनकी सेवा की सबसे बड़ी आवश्यकता है ।

अशोक

अशोक न लोकपीडा और मर्मांतक दुःख का अनुभव कर दूसरे ही दिन अपने साम्राज्य में घोषणा कराई—“राज्य में हिंसा का प्रथम बंद हो—शिकार में भी पशु पक्षी न मारे जाए—न किसी भी जीवधारी की व्यर्थ हत्या हो। रसोई के लिए भी पशु पक्षी और जलचर पकड़े और मारे न जाए।”

इसके शीघ्र बाद ही सम्राट अशोक ने एक और शिलालेख द्वारा सारे राज्य में घोषणा करा दी—“मुझे लोकहित के लिए काम करना चाहिए—और मैं किसके लिए धर्म करता हूँ यह देखना चाहिए—केवल इसलिए कि प्राणियों में चेतना फूकू और इस संसार को कुछ सुखी बनाऊ।”

कलिंग विजय के बाद जो राज्याधिकारी और लोक जन यह आशा लगाए बैठे थे कि उन्हें उच्चतर पद और स्वायत्तसाधन के बहाने मिलेंगे उन्हें सम्राट अशोक के इस स्व से बड़ी निराशा हुई, क्योंकि शीघ्र ही उन्होंने यह घोषणा भी शिलालेखों के द्वारा प्रसारित करा दी कि ‘राज्य का एक बड़ा काम यह होगा कि देश और विदेश में भगवान बुद्ध का वरणा विधान प्रचारित हो। पड़ोस के देशों में ही नहीं, सुदूर दश में यूनानी देश के राजा अण्टिओकस से भी परे के देशों में जहा टोलेमी, ऐण्टीगोनस, मार्गस और अलेग्जेंडर (सिकंदर) राजा शासन करते हैं, मानव वरणा का यह संदेश पहुंच जाना चाहिए।’

यसो भारत में ही दो स्वतंत्र बने प्रदेश चोल और पाण्ड्य में उन्होंने अपने प्रचारक पहले भेजे—श्रीलंका में उन्होंने अपने भाई महेंद्र का भेजा। नेपाल और कश्मीर में भी बौद्ध धर्म के सिद्धान्तों को स्वीकार कर लिया और सीरिया, मिस्र, मैसेडी

निया और इपीरस तक बौद्ध धर्म के महोपदेशक जा पहुँचे ।

पूर्व और दक्षिण पूर्व की ओर जिसमें आजकल ब्रह्मदेश, मलय, जावा, बाली, सुमात्रा, चीन हैं वहाँ और वहाँ से जापान तक बौद्ध धर्म के प्रसार के लिए प्रचारक गए ।

बाद में शिलालेखों में जो राजाज्ञा प्रसारित की गई उसमें करुणा का प्रमाद प्रजा पर बरसात हुए सम्राट ने कहा—“सभी मनुष्य मेरे बच्चे हैं । मैं चाहता हूँ कि उनका अगले सप्ताह में भी कल्याण हो ।” (शिलालेख २ १, ४३) “यही बात मैं मनुष्यमात्र के लिए चाहता हूँ ।” (अश्वघोषकृत बौद्धचरित, २-३५)

“मध्यम मार्ग का ही अनुसरण शासन-कार्य में भी करना चाहिए ।

“ईर्ष्या, घ्राण, क्रूरता, अवीरता, सुस्ती—ये सभी बातें मेरी नहीं हैं—त्याज्य हैं ।”

(शिलालेख—इना०)

“सीमा (प्रांत) के रहनेवाला के बारे में मैं यह इच्छा रखता हूँ कि वे इस बात को समझ लें कि मैं (राजा) चाहता हूँ कि वे डरें नहीं और मुझमें विश्वास रखें । उन्हें मेरी ओर से मुग्न ही मिलेगा—शोक नहीं । मैं उनकी वे सभी बातें सहन करूँगा जो सहन की जा सकती हैं और वे धर्म का आचरण करें ।”

पाटलिपुत्र के बारे में शाहवाजगढी के शिलालेख में सम्राट न गुदवाया है

“यहाँ एक भी जीवघारी की हत्या नहीं की जाएगी । न कोई समाज—नृत्य, संगीत, कहानियाँ, बाजे-गाजे, डाल-मजोग का होगा ।”

गिरनार के शिलालेख में कहा गया है

“युद्ध के आह्वान की आवाज धम के आह्वान की ध्वनि हो जाए। नतिकता का प्रसार हो जाए—रथयात्रा, हस्तियात्रा का प्रचलन हो जाए।”

कलिंग (घौली) शिलालेख ६— ‘शासन में सुव्यवस्था होने पर भी कुछ व्यक्ति जेल-यातना के कारण ही मृत्यु को प्राप्त हो जाते हैं और उससे कितना ही भोगा का अन्त होता है। इसलिए मध्यम माग वाछनीय होता है।’

गिरनार के शिलालेख में कहा गया है—“कृपालु सम्राट अशोक के राज्य में और उसके पार्श्व में स्थित चोल, पाण्ड्य, मत्स्यपुत्र, केरलपुत्र और ताम्रपर्णी में और ग्रीक राजा अण्डिआक्स और उसके पड़ोसी राजाओं के यहाँ, सम्राट अशोक ने, दो प्रकार की चिकित्साएँ प्रचलित की हैं—एक तो मनुष्य-जाति की औपधिक चिकित्सा और दूसरी जानवरों की औपधिक चिकित्सा। मनुष्यों और पशुओं के लिए गुणकारी जड़ी-बूटियाँ बाहर से मगाई गई हैं और जहाँ उनके पौधे नहीं हैं वहाँ वे लगाई गई हैं।

“मूल (जड़ी बूटियाँ) और फलों के पौधे जहाँ नहीं हैं वहाँ लगाए जाएँ। सड़का के किनारे कुएँ खुदवाए जाएँ और वृक्ष लगाए जाएँ जिनकी छाया और फल का लाभ मनुष्यों और पशुओं को मिले।

(२)

“दयालु सम्राट (अशोक) ने धार्मिक अनुज्ञा द्वारा पशु वध बन्द करा दिया है और सभी जीवधारियों में प्रतिहिंसा

पर रोक लगा दी है। ब्राह्मणों और श्रमणों के प्रति हिंसा का व्यवहार करने पर रोक लगा दी है और माता पिता तथा बड़े-बुजुर्गों की आज्ञा का पालन करने का आदेश दिया है।—

“मम्राट के पौत्र, पात्र और प्रपौत्र सभी इस नैतिकता का पालन करेंगे जिससे अन्त तक यह (परम्परा) कायम रहे। ये सभी स्वयं धर्म का पालन करते हुए दूसरों को बसा करने का उपदेश देंगे, क्योंकि यह सर्वश्रेष्ठ कतव्य है।”

गिरनार-५

“भूतकाल में सभी पहाड़ियों में शासन-संचालन और सूचनाएँ प्राप्त करने की व्यवस्था नहीं थी इसलिए मैंने यह व्यवस्था जारी की है कि सभी समयों में—जब मैं भोजन कर रहा होऊँ या अत पुर में होऊँ अथवा पशुपाला में, यहाँ तक कि मैं धार्मिक उपदेशों के स्थान में भी क्यों न होऊँ, इसी प्रकार मैं उद्यान में होऊँ, तो भी मेरे सन्देशवाहक वहाँ पहुँचकर मुझे सन्देश दें, क्योंकि मैं सभी जगह और सभी समय अपनी प्रजा (जनता) के काम के मामला में लगा रहूँगा। और यदि सयोगवश मैं कोई दान या धोषणा की सूचना या महामाया को कोई काम सौंप रहा होऊँ और उस मन्वन्ध में कायवाही परिपक्व हो रही हो तो भी एक क्षण का विलम्ब किए बिना उक्त सूचना मुझ तक सबन्ध और तुरन्त पहुँचाई जाए।

“मेरी आज्ञा से यह गिलालेख अंकित हुआ।”

कलमी

सम्राट ने कलसी के शिलालेख में कहा

“लोग विभिन्न प्रकार के रीति-रस्म सम्पन्न करते हैं जिनमें मादी गमी, लडके लडकी का जन्म, यात्रा आदि सम्मिलित हैं।

वे ऐसा अवश्य करें, किन्तु इसका कोई फल नहीं निकलता। रीति रस्म ऐसे मनाए जाएं जिनसे धर्म की वृद्धि और लाभ हो। ऐसी रस्में इस प्रकार हैं—‘अपने नीचे काम करनेवालों और अनुयायियों के साथ ममुचित व्यवहार, शिक्षकों के प्रति श्रद्धा भाव, जीवधारियों के प्रति हिंसा पर नियंत्रण और ब्राह्मणों, श्रमणों तथा सन्यासियों के प्रति उदारता। ये सब धर्म मंगल हैं।”

गिरनार—१२

“दयालु और पवित्र सम्राट सभी पथों का आदर करते हुए यह मानते हैं कि सभी धार्मिक पथों के सारमर्मों का विकास अनेक प्रकार का होता है फिर भी सबकी जड़ है—सत्य भाषा। इसका अर्थ यह हुआ कि दूसरे पथ की अपारण निन्दा नहीं करनी चाहिए। उलट दूसरे पथ का आदर ही करना चाहिए। इस व्यवहार से अपने ही पथ का विकास होता है।”

कुणाल

कुणाल

भारतीय इतिहास में कुणाल की कहानी इतनी करुणाजनक है कि सहस्रो वर्ष व्यतीत हो जाने पर भी उसके उपकरण ताजे बने हुए हैं—वह इतनी ज्वलन्त, मजबूत और मर्मस्पर्शी है कि उसका पढ़कर मनुष्य का हृदय पिघले बिना नहीं रह सकता।

कुणाल सम्राट अशोक की मन्तान थे और वे सम्राज्ञी पद्मावती की कोख में पैदा हुए थे। तिस दिन उनका जन्म हुआ, मारा पाटलिपुत्र उदाह उन्लास से उमड पडा। राजा प्रजा सभी प्रमन्नता से नाच उठे। सावजनिक रूप में नितन ही उत्सव मनाए गए। मीयत्रस का यह राजकुमार प्रभात की आभा के समान उद्दीप्त, सूर्य के समान तेजस्वी और चंद्रमा के समान सौम्य था। उसकी आँखें ऐसी सुन्दर थीं कि जो देखता, देखता ही रह जाता। नवजात शिशु का नामकरण पहले घमबिघर्षन रखा गया, पर पीछे उनकी विनाल और मनमोहक आँखें देग पर सम्राट ने सबके परामश से कुणाल पक्षी के नेत्रा के समान आँखें होने के कारण महाराजकुमार का नाम ही 'कुणाल' रख दिया। ज्यो-ज्यो बालक बढ़ता गया उसके अग-सोष्ठव और आकार वृद्धि के साथ उसकी आँखें अधिकधिक आकषक और

गुरु की बातों पर गहरा चिन्तन करते हुए कुणाल अपने शयन-कक्ष में गया। बाहर बंधों पर माध्यकालीन किरणें अमराई में छनकर कक्ष के भीतर आ रही थीं। आकाश विविध रंगों से रजित हो रहा था और अस्ताचलगायी सूर्य अपनी अन्तिम प्रतिभा दिखाकर लुप्त होनेवाले थे। पक्षी अपने अपने बोटरी की ओर उड़े जा रहे थे। आकाश में वायु प्रवाह का वेग बृक्षा के पत्तों और पत्थियों की उड़ान का श्वकारकर पीछे ढकल रहा था। किन्तु कुणाल के मन प्रकृति के सौंदर्य और नीला की आर आकर्षित नहीं हो रहा था। अन्त में अपने शयन-कक्ष में लटे लेटे रहाने चन्द्रादय का दृश्य देखा—फिर भी उनका मन गुरु शशस की बातों के प्रभाव से मुक्त नहीं हो सका। समार की सभी वस्तुएँ नश्वर हैं—फिर सब कुछ त्यागकर भगवान् बृद्ध की शरण में क्या न जाया जाए।

मुद्गर पाटलिपुत्र में वसन्त का उत्सव मनाया जा रहा था। लोग इस त्योहार की मन्त्रों में मुग्ध हो इधर-उधर दौड़ धूप, उद्घन कूद, गगन और नृत्य गान में निमग्न थे। मुद्गर परिवानधारी नागरिक अपने मित्रों से हिल मिलकर जानन्द की हितों ले रहे थे—सभी मुद्गर वस्त्रधारी सभी मुद्गर, सभी जानन्द हिलोरित, सभी विमुग्ध और तरंगित। नागरिकों को नामूर्ख रूप में सम्राट के उद्योग में इस माध्योत्सव में आमंत्रण था। घोषित किया गया था कि इस साध्य कायक्रम में महाराजकुमार कुणाल एकांतव्रत त्यागकर रमन्व पर नाट्य में भाग लेंगे और नामर्क के रूप में भूमिका का अभिनय करेंगे। सभी राजपुरष और राजा-सामन्त कमलनभ कुणाल के अभिनय का

अवलोकन करने आए थे। दशका म महिलाए भी किननी ही थीं जिनमें सम्राट अगोक की नवसम्राज्ञी त्रिप्यरक्षिता की दिल चरपी सबसे अधिन थी।

जब मारा अभिजात्यवग एकत्रित हो चुका और उम मुक्त उद्यान म सब अपने अपने पद-गौरव के अनुसार बैठा दिए गए, तो चंद्र की ज्योत्स्ना परिपूर्ण हो चुकी थी, अभिनेता-अभिनेत्रियों और दशक दार्शनिका—जामाल वृद्ध वनिता सभीके विनोद, हान्य और आनन्दोच्छ्रान से वायुमण्डल मोहक एवं मनो-मुग्धकारी बन गया। दशकदल में जिधर महिलाओं का मंदिर सबको आर्पित कर रहा था उधर नवसम्राज्ञी त्रिप्यरक्षिता का मुक्तमण्डल जैसे उस वातावरण में मोहिनी की मदिरा बसेर रहा था।

नाट्य अभिनय का यह उच्छ्राह आघो रान तक चलना रहा, यहा तब कि दशक जने उस अनन्त मंदिर-नागर में तरते नीचे न जाने कहा से कहा पहुँच गए, पर सहसा नाटक का मुखान्त निकट आ ही गया और पटाभेष के पश्चान जब दशकमण्डलों विसृग्ने लगी और सम्राट अशाक चले गए तो उद्यान रिक्त होने लगा।

रात के तीसरे पहर जब अन्य नागरिक गहरी निद्रा में सो गए थे, और महाराजकुमार कुणाल अपन अभिनय के पश्चात् शयन-वक्ष में माधवी लता के पीछे उसके पुष्पा की मुग्ध लेत हुए तरवटों बदनते हुए सोने का उपक्रम कर रहे थे, महना एक गुरमित वानायना उनके नेत्रों के नामन दृष्टिगाचर हुई। वह वार्ई अनिच्छ मुदरी मुग्धा रमणी थी। पर ऐसे समय पर वहा वार्ई अगात मुदरी उनक निकट आन का साहम कस कर सकती है।

क्षण-भर के दृष्टिक्षेप के बाद राजकुमार सहमकर उठ बैठे और उह एसा लगा, यह ता कोई और नहीं, उनकी नवोठा विमाना तिष्यरक्षिता है जो नाट्याभिनय क समय दशकवृन्द मे अपनी कमनीयता, यौवन और चपलता मे सबको आर्वापित कर रही थी ।

जब तिष्यरक्षिता के अधर स्तले ता उसक शत्रु का सुन कर जम कुणाल पर हिमराशि छा गई और उसका मारा शरीर सुन्न हो गया ।

दूसरे ही क्षण जब कुणाल का यह ज्ञात हुआ कि तिष्यरक्षिता उससे क्या चाहती है, तो जस उसक पाव नल की जमीन सिसक गइ ।

तिष्यरक्षिता न कुणाल की गहरी सास और यह छण्डा व्यवहार दखा तो जसे उसके सौन्दय की दमक कराल काल की ज्वाला बन गई—विशेष कर कुणाल के आठा से जब रा त्वर ये शब्द निकले—“मना आप मेरी माता होकर बेटे के सामने एसा असोमनीय व्यवहार कैसे ?”

तिष्यरक्षिता का दन चुर हा गया । वह नागिन की तरह फुफ्फा उठी । उसका सुन्दर शरीर घणा का भण्डार-सा बन गया ।

“अच्छा, तुम्हारी यह मजाल—तुम मुझ उपद्रव देने चले हा ता मुन ला । मैं तुम्हे महाराजकुमार नहीं रहने दूगी और तुम्हारी जमानों की हरियाली का धून म मिला दूगी ।”

कुणाल न सम्हलकर कहा—“मानाजी, मैं अपने कतव्य से विवर्तित होने की अपेक्षा मर जाना म्बीकार करूंगा, पर वह काम

न करूंगा जिससे आपकी और मेरी प्रतिष्ठा धूल में मिले। मैं सत्य और चरित्र को सबसे ऊँचा स्थान दूँगा।”

तिष्यरक्षिता ने कुणाल की ओर इस तरह देखा जैसे वह उसे डस लेगी और उसके अग से अपने क्षीम्य वस्त्र को रगटते हुए इस तरह आगे बढ़ गई जैसे वह बह रही हो—‘अच्छा, मैं देखूँगी कि तुम इस ससार को कैसे देखते हो।’

जिन दिनों की यह घटना है उसी समय उत्तर में तक्षशिला नगरी के राजा कुजरवर्ण ने अशोक के वैभव और गौरव से सतप्त हो उसे युद्ध के लिए चुनौती भेजी और सम्राट उसे दण्ड देने के लिए राजधानी पाटलिपुत्र से तक्षशिला के लिए युद्ध-प्रस्थान करने ही वाले थे, किंतु राजा के मंत्रियों ने न जाने किस गुप्त अभिमन्त्रि से प्रेरित हो राजा को यह परामश दिया कि “महामहिम ! इतनी दूर जाकर एक तुच्छ शत्रु का आप स्वयं पराजित करें, इसकी आवश्यकता नहीं है। इस काम के लिए तो महाराजकुमार कुणाल सर्वथा उपयुक्त हैं। अतः उन्हें ही सेना सहित वहाँ भेज दिया जाए।”

सम्राट को बात ज्ञात हुई और उन्होंने कुछ सोच-समझकर महाराजकुमार कुणाल को बुलवाया और उसका समुचित सम्मान करते हुए कहा— ‘मेरे प्रियतम वत्स ! मैं यह चाहता हूँ कि तक्षशिला के राजा कुजरवर्ण को परास्त करने के लिए तुम स्वयं सेना सहित वहाँ जाओ और यदि वह मेरी प्रभुता न स्वीकार करे तो उसे जीतकर पट्ट लाओ।’

कुणाल न तुल्य अपने पिता की आज्ञा का पालन किया और गंगा नदी पर तक्षशिला का प्रस्थान कर कुछ ही दिनों में वहाँ जा

पहुँचा। बहुत याड़े प्रतिरोध के बाद कुणाल के बाहुबल के आगे वह नतमस्तक हो गया। कुणाल यह काम पूरा कर लौटने का विचार कर रहा था कि राजा कुजरकण ने उसे सम्मानपूर्वक अपने यहाँ अतिथि के रूप में ठहरा लिया। कुणाल को उसका व्यवहार अच्छा लगा और धीरे धीरे वह उसकी मित्रता के पाग में बंध गया।



इधर पाटलिपुत्र में कुणाल की विजय के समाचार से उत्सव मनाया गया और सम्राट अशोक बड़ी उत्सुकता से अपने प्रियदर्शी पुत्र की वापसी की प्रतीक्षा करने लगे। उन्हें अत्र प्रतिश्रुण कुणाल की याद सताने लगी और वे उसका स्मरण बहुत प्रेमपूर्वक करने लगे।

कुणाल जब बहुत दिनों तक न लौटा और दिन पर दिन बीनने लग तो एक दिन सहसा सम्राट अशोक किसी अप्रत्याशित रोग से ग्रसित होकर बहुत पीड़ित हो उठे। उनका वह बीमारी ऐसी हठीली सिद्ध हुई कि राज्य के सभी चिकित्सक उनको स्वस्थ करने में असफल हो गए। अशोक ने कुणाल को भी गीघ्र लौटने का आदेश भेज दिया, पर उसी बीच नवोद्भा मन्त्री विष्य-रक्षिता को कुछ ऐसी सूची कि उसने एक ओर तो सम्राट को अपने उपाय से स्वस्थ करके मुहमागावर मागन का वरस प्राप्त कर लिया और दूसरी ओर यह साचा, यदि कुणाल आ गया और राजा ने उसे अपनी इस बीमारी की निगरानी के कारण राजकाज से अवतापर सिंहासन पर बिठा लिया तो कुणाल उसे, उसकी दुभावनाया का जानते हुए, कहीं का न छाडगा। इसलिए

पहले कुणाल का अन्त कर देने की युक्ति करनी चाहिए। इसी गुप्त विचार से उसने, सम्राट में वर मागने का वचन मिलने पर, कहा—“ता थया आप मुचे सचमुच मुट्मागा वर देगे ?”

“अवश्य !” सम्राट ने जोर देकर कहा।

तिष्यरक्षिता ने कहा—“तो मुझे सात दिन के लिए अपनी जगह शासन करने का अधिकार दे दीजिए। सात दिनों के बाद मैं आपका राजपाट आपको लौटा दूगी। मुझे इसीका शोक और चाह है।”

सम्राट ने सम्राज्ञी की मौलिक ढग की भाग पर प्रसन्नता हाँ प्रकट की और उसे उमका वर दे दिया, जिससे सम्राज्ञी ही राज्यस्वामिनी बनकर राजाज्ञा निकालने लगी।

राज्याधिकार प्राप्त करके तिष्यरक्षिता ने अपनी कुणाल-सम्यधी योजना पूरी करने की ठान ली। सात दिन के अन्दर सब कुछ पूरा करना है। उसने अशोक की राजमुद्रा के साथ राजपत्र पर एक राज्याज्ञा पत्र के रूप में लिखकर राजा कुजरवण को तक्षशिला भेजने की तैयारी कर ली। उस पत्र में उसने यह लिखा—“महाराजकुमार कुणाल यहा से बडा ही गहित कम—नवोढा विमाता के साथ अपराध करके जिना सम्राट की आधा ने तक्षशिला गया है, इमलिए उसके इम भोपण अपराध के बदले राजा कुजरवण उसकी दोना आर्षे निवलवा ले और मीयवण के इस तलक का अपने राज्य मे बाहर निवाल द। इम राजाना का उल्लघन न हो।”

इस जाली पत्र में अब एक ही कमी रह गई थी और वह थी सम्राट के हस्ताक्षर या हाथीदात वाली मुहर लगाने की। मुहर

के बाद जाकर तिप्परक्षिता का पत्र राजा कुजरकण के हाथ में पहुँचा दिया। राजा कुजरकण ने लिफाफा खोलकर पढ़ा तो यह जानकर आश्चर्य में डूब गया कि कुशल के विरुद्ध अत्यन्त गहिरी अभियोग नगाया गया है और उसने लिए उसमें भी कठोर दण्ड की मांग की गई है। राजा कुजरकण का आश्चर्य अभियोग की गम्भीरता को देखते कम हो गया। उसे यह सन्देश भी एक बार हुआ कि कुशल विमाता के प्रति ऐसा पाप धरने के अभियोग का अपराधी नहीं है सन्तान, परन्तु ही क्षण उस अपने कर्तव्य का भान प्रबल रूप में हुआ। प्रत्येक पक्ष का दूसरा पहलू भी हुआ करता है परन्तु कुशल के बारे में एका निणय करने के पहले सम्राट ने विचार तो किया होगा—आखिर व अपनी सन्तान का, जिसे परम विश्वस्त मानकर ही उन्होंने मृत्युसे लड़ने के लिए भेजा, अकारण दण्डित तो नहीं कर सकते।

फिर भी मैत्री भावना में भी कुजरकण ने कई दिना तक उस पत्र की कायवाही स्थगित कर रखी। किन्तु ऐसा बात लम्बे समय तक टबाकर रखी नहीं जा सकती थी—तक्षशिला की जनता का भी उससे अवगत करना था। लाकमन कच्चे धाग की तरह होता है। जब सम्राट के दण्डानापूण सन्देश की बात तक्षशिला की प्रजा को मालूम हुई तो उमम बड़ी टीका टिप्पणियाँ और चोमगोइया होने लगी, क्योंकि अल्पसमय में ही वहाँ के प्रजापति को महाराजकुमार कुशल प्रिय बन गए थे।

राजा कुजरकण ने काफी समय तक विचार किया और मित्रता एक सर्वोच्चवश बहुत समय निरुल जा दिया। किन्तु हर बात की सीमा हानी है और सोचने मात्रने राजा कुजरकण

इस परिणाम पर पहुँचे कि यदि सम्राट अगोक ही ऐसा क्रूरता-पूर्ण आदेश दे सकते हैं तो मैं कर ही क्या सकता हूँ। अन्ततः उसने निश्चय कर लिया कि वह भीषण पत्र कुणाल को दिखा दिया जाए। किन्तु जब कुणाल ने वह पत्र देखा तो उसने क्षण-भर भी घबराहट या परेशानी प्रकट किए बिना अपना धैर्य कायम रखते हुए कहा—“ता इस आदेश का पालन किया जाना चाहिए—त्रिलकुल खुले रूप में, जिससे प्रजा को भी ज्ञात हो जाए कि आपन सम्राट के आदेश का पालन अक्षरशः किया है।”

○

शीघ्र ही एक दिन निर्धारित कर दिया गया। तक्षशिला के विशाल उद्यान में भारी भीड़ जमा हुई। महाराजकुमार कुणाल वहाँ जाए गए और उनके साथ वधिवर भी। किन्तु जब आदेश के अनुसार आगे निकलने की घोषणा पढी गई तो चहेलिये ने साफ अन्वार करते हुए कहा—‘महाराज, मैं आपकी इस आज्ञा का पालन नहीं कर सकूँगा।’

जनता साम रोकर-र मुनती रही कि देखें आगे क्या होता है।

कुणाल ने वधिक से कहा—“जब तुम्हें आदेश मिल रहा है तो क्या नहीं कर सकते ?”

‘उमलिए कि मैं पालन नहीं हूँ—मैं इस सुन्दरता की मूर्ति-चन्द्रमा की ज्योति का अपहरण नहीं कर सकता।’

फिर उन्नाटा छा गया। किन्तु कुणाल ने अपने भुजदण्ड और राजकीय मुकुट उतार दिए और कहा—“इन आभूषणों का पुरस्कार समझकर अपना काम पूरा करो।”

के बाद जाकर तिष्यरक्षिता का पत्र राजा कुजरकण के हाथ में पहुँचा दिया। राजा कुजरकण ने निफाफा स्वातकर पढ़ा तो यह जानकर आश्चर्य में डूब गया कि कुणाल के विरुद्ध अत्यन्त गर्हित अभियोग लगाया गया है और उसके लिए उससे भी कठोर दण्ड की माग की गई है। राजा कुजरकण का आश्चर्य अभिभाग की गम्भीरता को देखते कम हो गया। उसे यह सन्देह भी एक बार हुआ कि कुणाल विमाता के प्रति ऐसा पाप करने के अभियोग का अपराधी नहीं हो सकता, पर दूसरे ही क्षण उस अपने वन्य का मान प्रबल रूप में हुआ। प्रत्येक पक्ष का दूसरा पहलू भी हुआ करता है परन्तु कुणाल के बारे में ऐसा निणय करने के पहलू मन्नाट ने विचार तो किया होगा—आखिर वे अपनी सन्तान का, जिसे परम विद्वस्त्र मानकर ही उन्होंने मुझमें लडन के लिए भेजा, अकारण दण्डित तो नहीं कर सकते।

फिर भी मन्त्री-भावना में भी कुजरकण ने कई दिना तक उस पत्र की कामवाही स्थगित कर रखी। किन्तु ऐसी बात लम्बे समय तक दबाकर रखी नहीं जा सकती थी—नभशिला की जनना की भी उसमें अवगत करना था। लाकमन कच्चे घागे की तरह होता है। जब मन्नाट के दण्डाज्ञापूण मन्देश की बात तक्षशिला की प्रजा की मालूम हुई तो उसमें बड़ी टीका टिप्पणियाँ और चीमगोइया होने लगी, क्योंकि अल्पसमय में ही वहाँ के प्रजाजन को महाराजकुमार कुणाल प्रिय बन गए थे।

राजा कुजरकण ने बाकी समय तक विचार किया और मित्रता एवं सकोचवश बहुत समय निकल जान दिया। किन्तु हर बात की सीमा होती है और सोचत-सावने राजा कुजरकण

इस परिणाम पर पहुँचे कि यदि सम्राट अशोक ही ऐसा क्रूरता-पूर्ण आदेश दे सकते हैं तो मैं क्या ही क्या सकता हूँ। अन्ततः उसने निश्चय कर लिया कि वह भीषण पत्र कुषाल को दिखा दिया जाए। किन्तु जब कुषाल ने वह पत्र देखा तो उसने क्षण-भर भी घबराहट या परेशानी प्रकट किए बिना अपना वैय कियम रखते हुए कहा—“तो इस आदेश का पालन किया जाना चाहिए—विलकुल सन्तुष्ट रूप में, जिससे प्रजा को भी ज्ञात हो जाए कि आपने सम्राट के आदेश का पालन अक्षरशः किया है।”

०

शीघ्र ही एक दिन निर्धारित कर दिया गया। तक्षशिला के विशाल उद्यान में भारी भीड़ जमा हुई। महाराजकुमार कुषाल वहाँ लाए गए और उनके साथ वधिव भी। किन्तु जब आदेश के अनुसार आग्ने निबालन की घोषणा पढ़ी गई तो वहेलिये ने साफ इन्कार करते हुए कहा—‘महाराज, मैं आपकी इस आज्ञा का पालन नहीं कर सकूँगा।’

जनता माम गौकणर भुनती रही कि देखें आगे क्या होना है।

कुषाल ने वधिव से कहा—“जब तुम्हें आदेश मिल रहा है तो क्या नहीं कर सकते ?”

“उमलिए गि मैं पागल नहीं हूँ—मैं इस सुन्दरता की मूर्ति-चन्द्रमा की ज्योति का अपहरण नहीं कर सकता।”

फिर मनाटा छा गया। किन्तु कुषाल ने अपने भुजदण्ड और राजकीय मुरट तार दिए और कहा—“इस आभूषण का पुरस्कार समझकर अपना काम पूरा करो।”

पहली मजिल है। अब आप सब धर जाए। मेरे आशोवाद आपने साथ होंगे।”

तक्षशिला क राजमहल में जब तब एक एमी विश्वासपात्र आत्मा थी जो आज के इस कृत्य की कोई जानकारी नहीं रखती थी। वह थी कुणाल की प्रियतमा कचनमाला। जब उसे यह भीषण समाचार मिला तो वह राजमहल में घटनास्थल की ओर दौड़ी। वहाँ कुणाल का उनके परम मुन्दन तथा सजीन अवस्था में देखा तो वह घुटना के बल कुणाल के पास बैठ ग—‘आपका यह क्या हो गया?’ वह मूर्च्छित हाव में भूमि पर गिर पड़ी और लोगों ने उसे सम्हाला। वह रान-रान कुणाल से बोली—“अब मैं अपने इस जीवन का रस्ता क्या करूंगी?” लागाने कुणाल को उसके निकटतम पहुँचाया। कुणाल अपनी अन्तर्दृष्टि में प्रकाश में बोला—‘कचनमाला, प्रत्येक व्यक्ति का ममार में अपने किए का प्रतिफल मिलना है। इस ममार का कमफन मानकर दुर्भाग्य-लिप्त प्राणियों को दुर्भाग्यमय दण्डकर मानव का निमाण अपने प्रिय पात्रा से विहीन होने के लिए हो हान की बात को समझाए तुम्हें राना नहीं चाहिए प्रिय।’

शोकमत्त भीड़ में एक जुलूस, जिसमें कुणाल था, गीरे-धीरे कुजरवण के राजमहल की ओर लौटा और नेत्रहीन कुणाल ने वहाँ कुजरवण को सम्बोधन करते हुए कहा—“मेरे राजकीय मित्र, क्या मुझे पत्नी के शोक-मत्ताप में जाने अब आप अपने राजप्रासाद में कुछ दिन और ठहरने करोगे?”

‘आप

करें क्या

का आ

आज्ञा का पालन नहीं करूंगा। जो कुछ हो गया वही बहुत है।”

इसके बाद कुणाल-दम्पती थोड़े समय तक अपने मानसिक और शारीरिक उपचार के लिए राजमहल में और ठहरा। उनपर जो विपत्ति पड़ी थी उससे उनका अस्तित्व मिट-भा गया था और शारीरिक विपत्ता के कारण उनको आगे भी कष्टमय जीवन ही व्यतीत करना था।

कुछ दिनों के बाद कुणाल ने अपनी पत्नी में कहा—“प्रिये, मैं अब अपने पिता की राजधानी से तो निर्वासित हो ही गया हूँ। ऐसी अवस्था में तुम क्या करोगी और कहा जाओगी? क्या तुम अपने पिता के यहाँ शरण लेना पसन्द करोगी?”

वचनमाला ने पूरे धम और दृढ़ता के साथ अपने मनाभाव प्रकट करते हुए कहा—‘आयपुत्र, ऐसे कठोर शब्द न कहा जा मुझे अपन प्राणप्रिय स पृथक् होने के सूचक है। मैं तुम्हारी छाया होकर रहूँगी चाहे जा हो, आप जहा जाएंगे मैं आपके साथ रहूँगी। बुराई भलाई जो भी जाएगी उसमें मैं भाग लूँगी।’

०

उसी दिन संध्या समय कुणाल दम्पती ने राजा कुजरकण से विदा ली। तक्षशिला के राजकीय सम्मान के साथ आए थे और अब यहाँ से मिदकु के रूप में केवल एक वीणा हाथ में ले बाहर निकल पड़े।

पाटलिपुत्र की वापसी की यात्रा कसौ भिन्न थी। न कोई साधन न सामग्री, वाहन और श्रमिक या रक्षक। यात्रा का कष्ट मिटाने के लिए मनोरजन का कोई साधन नहीं और न खाद्य-सामग्री। सामान्य आवश्यकता-पूर्ति के लिए भी उन्हें असह्य

कष्ट उठाना पड़ रहा था। ऐसी धार परीक्षा के समय आयकन्या ने अपने अक्षम पति की सेवा जिस श्रद्धा, निष्ठा और लगन के साथ की वह एक आदम के रूप में वही जा सकती है। कुणाल ने जीवन में सामान्य धर्म और यात्रा कष्ट नहीं मंहा था इसलिए उनका वह भार और कष्ट उस आयकन्या ने अपने कंधों पर ले लिया। कुणाल को वीणा बजा लने के सिवा और कुछ ऐसा नहीं आता था जिससे वह अपने दुःख का भार हल्का करता। वे धीरे-धीरे अपनी यात्रा के कष्ट से अभ्यस्त होकर जाग की मजिलें काटने लगे। कुणाल माग के गावा में रुककर वीणा बजाने लगता ता लोग अनायास इकट्ठे हो जाते और उनके खान पीने भर का दे दते। इस तरह उनका लम्बा पथ भार एक-एक दिन करके कठिनाई से कटने लगा। वे जिस प्रकार के चौथडा म धे डाम गोईं स्वप्न में भी यह कल्पना नहीं कर सकता था कि वे सम्राट और पुत्रवधू हैं।

अन्तत यस्त ऋतु निकट आने लगी और मयोगवशवमन पचमी के दिन ही यह दम्पती पाटलिपुत्र पहुंचा। दाना ने परम्पर परामश किया कि उनके लिए श्रद्धा दया हागा। निश्चय हुआ कि एक वार ता सम्राट तक पहुंचने का प्रयत्न करना ही होगा। कुणाल को यह विश्वास नहीं था कि अब उसे देखकर राई पहचान सकता है। फिर भी किसी दयालु द्वारपाल की दया ने उह यह अवसर मिल गया कि व रथ मारथिया क बीच अश्व शाला के निकट रात काट ल। वह रात्रि उह पहान भी प्रतीत हुई।

उपाकाल तक अपनी दया का भान करत-करत कुणाल का

नींद नहीं आई। जब प्रभात निकट आ गया तो कुणाल ने अपनी वीणा उठा ली और उसके तार छेड़ दिए जिसे उसके सतप्त हृदय को थोड़ी ठडक मिल जाए। वह वीणा वादन ही जैसे कुणाल के जीवन की रागिनी बन गया। उसके स्वर गुजार से सारा राजप्रासाद आन्दोलित हो उठा और स्वर लहरियो ने सोए-अधसोए और जागत सभीको जैसे आत्मविभोर कर दिया। वह वीणा वादन के साथ जिस स्वरचित कविता का गान कर रहा था उसमें उसके जीवन की बाल्यकालीन घटनाओं से लेकर उसकी आखें निकाले जाने तक का स्वरचित पद्यवद्ध कर्णामय प्रसंग आता था। उसका कण्ठस्वर और वीणा की तान ने मिलकर प्रभात के मन्द वायु में ऐसी करुण धारा प्रवाहित कर दी जिसका प्रभाव हर हृदय पर पडना अनिवाय हो गया। रागिनी में बाहरी आखें निकाले जाने पर अन्तर्दृष्टि की बौद्धिक आभा का विकास किस प्रकार हुआ और उसके आनन्द में नेत्रहीनता का तथा अन्य शारीरिक कष्ट किस प्रकार तिरोहित हो गए, यह प्रसंग उसने जैसे आत्मा की स्फूर्ति के साथ वायुमण्डल में प्रवाहित कर दिया। उसकी स्वरचित कविता की वह कड़ी जिसमें ज्ञान के शुद्ध एवं दिव्य आलोक के जागरण का वर्णन था, उसमें कहा गया था कि जो अन्तर्दृष्टि से देखने की क्षमता प्राप्त कर लेता है वह आवागमन के बाधनों से मुक्त हो जाता है और जो इस ससार में दुखी, चिन्तित, पीडित, अस्तित्व के भार से आश्रान्त है उसे इन्द्रियगम्य वस्तुओं के भोग का त्याग कर देना चाहिए।

गायन और वाद्य की यह ध्वनि सम्राट अशोक के शयन-कक्ष में प्रविष्ट हो रही थी और वे उसे पहले निद्रावस्था में, फिर अध-

निद्रावस्था में और अन्ततः जाग्रत अवस्था में सुनकर आश्चर्य-मुग्ध हो रहे थे कि आज ऐसी लय में सुबह-सुबह यह रागिनी कौन छेड़ रहा है। प्रसन्नतापूर्वक उनके मुह से यह निकल गया—
 “यह तो कोई चिरपरिचित कण्ठस्वर लगता है। हा हा, यह तो मेरे प्रिय पुत्र कुणाल की आवाज लगती है। ऐसी वीणा भी वही बजाता था—बिलकुल वसी ही लगता है। क्या वह लौट आया और मुझे उसकी सूचना तक नहीं मिली ?”

सम्राट ने अपने अग्ररक्षक के द्वारा द्वारपाल को बुलवाकर पूछा—“द्वारपाल, सुनो तो ! क्या यह कण्ठध्वनि महाराजकुमार कुणाल की सी नहीं लगती ? पर इस ध्वनि में ऐसी करुणा पहले कभी नहीं सुनी थी और वह मेरी आत्मा में इस प्रकार पहने नहीं खुबी जैसी वह आज मुझे उद्बलित कर रही है। मुझे ऐसा लगता है कि मैं वह हाथी हूँ जिसका बच्चा गुम हो गया है। तुम जाकर देखा—निश्चय ही यह कुणाल की आवाज है और वीणा वादन भी उसका सा ही है। जाओ, लाजकर लाओ कौन कहा से गा रहा है।”

द्वारपाल ने जाग्रत अश्वशाला के पास से सारथियों के बीच वीणा बजात हुए नेशहीन कुणाल को, प्रातःकालीन प्रभास में धूलि धूसरित अवस्था में मग्न होकर गाने-बजाते देखा। उसने देखा कि यह व्यक्ति तो याही अपनी मस्ती में गा रहा है—उसका किसीसे कोई सम्पर्क नहीं है, न कोई उसकी ओर आवर्षित हुआ है। द्वारपाल ने लौटकर सम्राट को सूचना दी—“महाराज, वह तो एक अघा भिखारी है जो अश्वशाला के पास सारथियों के बीच रात काटने को सो गया था। अब उठकर गा रहा है—

उसकी पत्नी भी उसके साथ है।”

इस सूचना से सम्राट अशोक बहुत चिंतित हुए। उनकी अब लगा कि उनका वह भयानक सपना अब साकार ही गया दीखता है। उन्हें अब लगा कि कुणाल की आखें कैसे और किस पड़यंत्र से निकलवाई गई होंगी।

“जल्दी जाओ और उम अचे भिखारी को तुरन्त यहाँ लाओ। मेरे पुत्र पर अवश्य ही भारी विपत्ति आ पड़ी है।” कहकर सम्राट रो उठे।

द्वारपाल फिर अश्वशाला के निकट रथागार में पहुँचा और जल्दी से वहाँ पहुँचकर अचे भिखारी से पूछा

“आपका नाम क्या है? आप किसके पुत्र हैं?”

अचे भिखारी ने द्वारपाल की आर मुह करके कहा—“मेरे पिता का नाम सम्राट अशोक है और मुझे कुणाल कहते हैं। किन्तु अब मैं उस युद्ध भगवान का पुत्र हूँ जिसने देवी विधान की रचना की है।”

द्वारपाल ने दाना पति पत्नी को जल्दी से वहाँ पहुँचाया जहाँ सम्राट अशोक आतुर हो प्रतीक्षा कर रहे थे।

सम्राट उन दाना के पहुँचते ही उन्हें राजप्रामाद के उस भाग में ले गए जो घाटिका से मिलता था। घाटिका के वृद्धों पर यमन्त छाया था और माधवीलता के पुष्प की गंध अचे कुणाल के नामिका रथा में प्रवेश कर रही थी। पक्षिया की कणप्रिय चहक उसने गानों में गूँज रही थी। किन्तु सम्राट को वसन्त की शोभा और उसरी बहार से जैसे कोई सम्बन्ध नहीं था—वे उम अचे भिखारी का जिसके शरीर पर अकाल वायुंक्षय और भुरिया

दिखाई देने लगी थी, ध्यान से देख रहे थे—भूय की तपन और वायु के झोका न उसे बदल दिया था। उसके पुराने राजकीय वस्त्र मैले और गंद होकर भी जैसे उसके पूर्व गौरव की कहानी कह रहे थे। सम्राट मोच रहे थे कि यदि यह कुणाल है तो इससे बातचीत कैसे आरम्भ की जाए। कुणाल के शरीर में शक्ति नहीं रह गई थी। इसलिए सम्राट न उससे निश्चित रूप में जानने के लिए पूछा—“क्या तुम कुणाल हो ?”

“हां, मैं अवश्य ही कुणाल हूँ—अशोक का बेटा कुणाल।”

इस उत्तर से सम्राट का शरीर सिहरकर सुन्न हो गया और वे लडखड़ाकर अपने पुत्र के पैरों के पास ही लुढ़क पड़े।

राजा के पुराने मंत्री ने आगे बढ़कर उन्हें सम्हाल लिया और जब उनकी दशा कुछ सुधर गई तो उन्हें पास ही आगम के साथ बिठा दिया गया।

फिर अशाक ने कुछ मुस्कराते हाते ही कहा—‘मेरे प्यार बेटे ! मेरे शासन के यगस्वी अधिकारी, तुम्हारी यह दशा कम हुई ? तुम अपने कमलनेत्रों से कैसे बचिंत हो गए ?’

इस प्रश्न पर कुणाल ने अपने पिता का वह लम्बी कहानी सुनाई जिसकी रचना उनके नाम पर सम्भवतः पद्मपुराण के कर्तव्य तथा उसके ऊपर लागू करके उसने नश्वरहीन बना दिया गया। जब वह कहानी समाप्ति पर पहुँची तो कुणाल ने कहा—“अब जातिप्यरक्षिता मुझपर मुसीबतों का पहाड़ ढाकर, मुझे मेरे नाना ने—बाहरी दृष्टिदानी से बचिंत करके मुझे अन्तर्दृष्टि प्रदान करने का कारण बनी, उसे दीघकालीन भुक्त, जीवन और अधिकार मिले।”

सम्राट ने तुरन्त एक आदेश दिया और विजली की सी चपल गति से भृत्यो ने मन्त्राज्ञी तिप्परक्षिता को सम्राट की सेवा मे ला उपस्थित किया । सम्राट के मन मे उसे देखकर ऐसी श्रोधाग्नि भडकी कि उन्होंने अपने आग्नेय नेत्रो से उसे घूरकर कहा—
 “भूर स्त्री, यट घरती फट क्यो नही जाती कि तू उसमे समा जाए ? आज रात आन के पहने ही तुझे अपनी क्रूरता, धोखे और पड्यत्र के कारण प्राणो से हाथ धोना पडेगा । मैं तेरा त्याग करता हू । मैं तेरी आँखें भी उसी तरह निकलवाऊंगा जिस प्रकार मेरे पुत्र की निकाली गई हैं । तुम्हारी मारी दुगति करके ही तुम्हें फासी के तम्बे पर लटकाया जाएगा । ”

सम्राट की इस धोषणा के बाद कुछ देर सनाटा छाया रहा । किन्तु सम्राट के बूढे मन्त्री ने धैर्यपूर्वक उठकर उपदेशात्मक ढंग मे कहा—“सम्राट ! महामहिम धर्मरक्षक ! आप भगवान बुद्ध के अनुयायी है जिनका कहना है— हिंसा न करो, क्योकि करण व्यक्ति ही करुणा प्राप्त करने का अधिकारी है—अहिंसा ही हिंसा का समुचित उत्तर है ।”

कुणाल अब तक शांत होकर महामन्त्री की बात सुन रहा था, अब वह सम्राट के चरणो मे गिरकर बोला—“सम्राट ! तिप्परक्षिता का बध करना आपकी अप्रतिष्ठा का कारण होगा । स्त्री-हत्या या भी वर्जित है । आपका पुत्र कुणाल अब सभी कष्टो स परे है । मेर अत्ततम मैं अपनी इस मा के प्रति भलाई की भावना है, भने ही इन्होंने मेरी आँखें निकालने का पड्यत्र और आदेश किया । इसल मेरी बाहरी आँखें गइ, पर अन्दर की आँख खुल गई । मैं अब भगवान की उस करुणा को, जो अहिंसा की

कुण्डलकेशा

उन दिना राजगृह की शोभा निराली थी। चारों ओर प्रकृति के सौंदर्य का निखार छाया हुआ था। उस अलौकिक छटा के बीच मानव निर्मित प्रासाद तत्कालीन राज्य वैभव का परिचय दे रहा था। नगर के बीचोबीच चार राजमार्गों के संधिस्थल पर नगरसेठ का भव्यतम महल देश विदेश में चर्चा का विषय बन चुका था।

नगरसेठ ने अपनी एकमात्र सन्तान, भद्रा, को अनोखे लाडल्यार से पाला था। उसकी कोई भी बात टाली नहीं जाती थी। छोटी से बड़ी तक उसकी इच्छाएँ और मार्गें पूरी की जाती थी। इस पैतृक प्रेम और सम्पत्ति के विपुल विलास में भद्रा का सुकोमल विक्रम हुआ।

भद्रा को पिता की ओर से पूरी स्वतंत्रता थी। वह हर प्रकार के जलमे-तुलूम मेले ठेने, नाट्य, गोष्ठी और मन्ना मन्नाज में जाती और चर्चाओं में खुलकर भाग लेती थी। धर्मगुरुओं में भी उसकी श्रद्धा थी। भगवान बुद्ध के उपदेशों का उसपर प्रभाव पड़ चुका था। बड़े से बड़े धार्मिक मठ और राजप्रासाद उसके लिए खुले थे। वह सभी जगह स्वच्छन्द रूप में जाती, सभी प्रकार की

कुण्डलकेशा

उन दिनों राजगृह की शोभा निराली थी। चारों ओर प्रकृति के सौंदर्य का निखार छाया हुआ था। उस अलौकिक छटा के बीच मानव निर्मित प्रासाद तत्कालीन राज्य वैभव का परिचय दे रहा था। नगर के बीचोंबीच चार राजमार्गों के सन्धिस्थल पर नगरसेठ का भव्यतम महल देश विदेश में चर्चा का विषय बन चुका था।

नगरसेठ ने अपनी एकमात्र सन्तान, भद्रा, का अनाखे लाड़ प्यार से पाला था। उसकी कोई भी बात टाली नहीं जाती थी। छोटी में बड़ी तक उसकी इच्छाएँ और मार्गें पूरी की जाती थी। इस पैतृक प्रेम और सम्पत्ति के विपुल विलास में भद्रा का सुखोत्सव विकसित हुआ।

भद्रा को पिता की ओर से पूरी स्वतंत्रता थी। वह हर प्रकार के जलसे जुलूस में ले ठेले, नाटक, गोष्ठी और मना मनाय में जाती और चर्चाओं में खुलकर भाग लेती थी। धर्मग्रन्थों में भी उसकी श्रद्धा थी। भगवान बुद्ध के उपदेश का उत्तम प्रभाव वह चुका था। बड़े में बड़े धार्मिक मठ और राजप्रासाद नन्कू लिए खुले थे। वह नमी जगह स्वच्छन्द रूप में जाता, मना प्रकार का

वाते सुनती और अपने विनम्र, भद्र एव आप्तजनोचित व्यवहार से सबको प्रसन्न करती थी। स्त्रियो और लडकियो मे भद्रा का भाग्य ईर्ष्या का विषय बना हुआ था।



श्रेष्ठि कन्या जब पौडशीया हुई तो उसमे बालमुलभ अवस्था चित चचलता भी आई और अपनी अवस्था के लडके-लडकिया के साथ उसका मेल जोल भी बढा। वह पिता की लाडली और एकमात्र सत्तान होने के कारण मुक्त विचरण तो करती थी, पर उसकी भी सीमाए थी जिनका अतिक्रमण वह कभी कभी ही करती थी।

उन दिनो बौद्ध धम का प्रभाव राजा-रक, ऊच नीच और पढे-अपढ सभीपर था। प्राय यह एक प्रचलन हो गया था कि छोटी अवस्था के बालक-बालिकाए बौद्ध धम ग्रहण कर अपन मा-बाप का नाम रोशन करते थे। भद्रा ने भी समय आने पर मठा के सम्पक से अपनी यह आध्यात्मिक लिप्सा साध ली और उसे भिक्षुणी बना लिया गया।

नगरसेठ नही चाहते थे कि उनकी वह एकमात्र सत्तान धम की दीक्षा लेकर भिक्षुणी बन जाए। पर उन दिनो यह पद पाना नगरश्रेष्ठि की पुत्री और स्वयं नगरसेठ के श्रेष्ठतर सम्मान की वान थी। ऐसी अवस्था मे नगरसेठ के लिए और कोई ऐसा माग श्रेय नही रहा कि वे अपनी पुत्री की इस शुभ इच्छा का अपना समथन प्रदान न करें।

भद्रा का सम्पक अत्र उच्चतर धर्माचार्यों, राजपुराहिता, शास्त्रियो एव साहित्यिक पत्रा मे बढा। यह नगर के उच्चतम

बौद्धिक वर्गों में मुक्त प्रवेश पा गई और सभी जगह उसे रूप, गुण, ज्ञान और त्रिलक्षण प्रतिभा के साथ साथ भिक्षुणी के समादरणीय पद के कारण श्रद्धा की दृष्टि से देखा जाने लगा ।

भद्रा पुष्पवग की जिन मण्डलियों में मुक्त विचरण करती थी उनमें से राजपुरोहित का पुत्र सुत्यक एक था जो विद्या, विनय, रूप और गुण में कुण्डलकेशा से आगे नहीं तो पीछे भी नहीं था । कुण्डलकेशा उसके रूप गुण पर आसक्त हो गई और उससे नित्य शास्त्र, धर्म और साहित्य चर्चा किया करती थी ।

राजपुरोहित के पुत्र सुत्यक में जहां अनेक सद्गुण थे वहां एक ऐसी आत्मा भी थी जिसे उस युग के कानून के अनुसार अपराध माना जाता था । एक बार संयोगवश वह एक ऐसे ही अपराधरूपी पत्र में पस गया जिससे पुलिस के अधिकारियों ने उसे बन्दी बना लिया ।

भद्रा के लिए यह वज्रपात-सा था । उसने यह दुःखद समाचार सुना तो अन्न जल ग्रहण करना त्याग दिया । अन्त में नगरसेठ का सब रहस्य मालूम हुआ तो उन्होंने पुलिस अधिकारियों का समझौता घूस देकर पुरोहित पुत्र को बचा लिया ।

नगरसेठ ने पहले तो यह प्रयत्न किया कि भद्रा एक भिक्षुणी के नाते पुरोहित-पुत्र से सम्पर्क त्याग दे—यहां तक कि उससे मिलना जुलना भी बन्द कर दे, किन्तु इसपर कुण्डलकेशा ने फिर अन्न जल का त्याग कर दिया और यह प्रतिज्ञा कर ली कि यह या तो पुरोहित पुत्र को प्राप्त करगी या प्राणत्याग कर देगी ।

नगरसेठ उसकी इस प्रतिज्ञा से बहुत चिन्तित हुआ, किन्तु

कुण्डलकेशा को अपनी प्रतिज्ञा पर अटल देख उसने भद्रा का हाथ पुरोहित पुत्र सुत्य को समर्पित कर दिया। कुण्डलकेशा को उसके बाप ने विपुल मूल्यवान रत्नाभूषण दिए जिससे वह सुत्य के साथ सुख से रहने लगी।

किन्तु पुराहित-पुत्र सुत्य में जो बुरी आदत थी उसका अब काफी विकास हो गया। वह पहले दूसरो पर अपने हस्तलाघव की पट्टता का प्रयोग करता था—उड़े उड़ सेठ साहूकारो और राजपुरसा को अपने हाथ की सफाई दिखता था, पर जब उसके घर में ही प्रचुर सम्पत्ति की स्वामिनी आ चुकी थी। उसने भद्रा के बहुमूल्य मणि-माणिक्या पर हाथ साफ करने के इरादे से एक चूठा बहाना बनाकर एक दिन कहा—“भद्रे, मैंने एक बात तुमसे अभी तक नहीं कही थी। मैं जब पूर्ववर्ती अभियोग में पुलिस द्वारा पकड़ा गया था तो मन ही मन यह मनौती मानी थी कि यदि किसी प्रकार उस अभियोग से मुझे मुक्ति मिल गई तो मैं स्थानीय देवता की पूजा करूंगा। अब वह अवसर आ गया है। इसलिए पूजा के लिए अर्घ्य तैयार कर दो।”

भद्रा न पूजा के लिए प्रसन्नतापूर्वक अर्घ्य तैयार कर दिया और वस्त्राभूषण से सुनज्जित हो पति के साथ देवस्थान को चल दी। रास्ते से ही सुत्य ने भद्रा की सेविकाआ को वापस लौटा दिया और अकेली भद्रा का साथ ने पवत पर चढ़ने लगा। सुत्य ने अपना रुख काफी चढ़ाई के बाद बदल दिया। पर भद्रा ना उमपर प्रेमासक्त थी। इसलिए उस आर लक्ष्य नहीं कर सकी।

जब भद्रा के घर जाने पर नी मुख्य उमे लेकर ऊपर बढ़ता ही गया और अन्न में एक ऐसी चोटी पर पहुँच गए जा बिलकुल

मुनसान, वोहड और घाटिया मे आवेच्छित थी तो सुत्यने कहा—
“भद्रा, वस अब हम अपने लक्ष्य तक पहुच गए हैं । तुम साडी के
मिजा सभी आभूषण यही उतार दो ।’

भद्रा कुट्ट सकपकाकर बोली—‘ वयो, स्वामी ? क्या मुझे
काई अपराध वन पडा ह ?”

सुत्य ने कहा—“तो क्या तुमने यह समझा था कि मैं सन-
मुच देवता को अघ्य दन यहा आया हू ?”

भद्रा ने विनती की—“किन्तु स्वामी, मैं और ये सभी
आभूषण तो आप ही के ह ।”

सुत्य ने कहा—“मैं कुछ नहीं जानता ।”

भद्रा सीधी और विनम्र अवश्य थी, पर वह थी प्रत्युत्पन्नमति ।
वह सुत्य के आदेशानुसार आभूषण उतारने को तैयार हो गई
और ऐसा करन को प्रस्तुत होकर उमने सुत्य से प्रार्थना की—
‘ आय ! मैं आपकी आज्ञा का पालन कर रही हू, किन्तु आप
मेरी एक इच्छा का पालन करन की कृपा करें । मुझे ये वस्त्रा-
भूषण पहने हुए ही एक बार अपना आतिगन कर लेने दें ।”

धूत आर दुष्ट सुत्य नारी के इस आवेदनको मान गया । भद्रा
न आवेदन का छल करके उमे एक ऐसा प्रबल धक्का दिया कि
कगार पर सडा सुत्य घाटीम हजार हाथ नाचे गिरकर चकना-
चूर हो गया और फिर सास न ले सका ।

भद्रा अपनी इम चतुरता से प्रसन्न होकर भी शाय मे पड
गई । उसन साचा—‘अब मुझे इम अवस्था मे घर लौटना ठोक
नही है । मुझे इस सप्तार का त्याग कर देना चाहिए ।’

इम प्रकार विचार करके वह एक आश्रम मे चली गई और

वहा अपने सुंदर केशों का लुचन कर (उसाड) दिया। लुचन के बाद उसके केश फिर धुंधराले होकर उगे। उन धुंधराले केशों के कारण उसका नाम ही कुण्डलकेशा पड गया।

अपने इस उत्तर जीवन में कर्मणापात्रा और पुष्प-लिप्ता की शिकार भद्रा तन्त्रशास्त्र का अध्ययन करने लगी और थोड़े ही समय में वह उस ज्ञान की विख्यात वाग्मी और तन्त्रपण्डिता मानी जान लगी। आश्रम की शिक्षा समाप्त कर वह वाद-विवाद करती हुई ज्ञान की खोज में सतत भ्रमण करने लगी। वह शास्त्राथ में ऐसी कुशल बन गई कि उसके सामने बड़े बड़े पण्डित विचलित होकर उखड जाते थे।

स्तिने ही विद्वाना को शास्त्राथ में हराते हुए वह धर्म-सनापति सारिपुत्र के यहा पहुची और वहा उनके साथ शास्त्राथ में परास्त होने के पश्चात् उनके चरणों में गिरकर पूछा

‘मरा व्रत पूरा हुआ भन्ते ! मैं आपनी शरण लेती हूँ !’

किन्तु सारिपुत्र ने इस बात का विरोध करते हुए कहा—
“भद्रे, तू मेरी शरण नहीं भगवान् बुद्ध की शरण ले। तू उनके ही निरुद्ध जा—इस युग में एक वही शरण्य है।’

भद्रा केशकुण्डला ने भगवान् बुद्ध के निकट जाकर वहा अपनी विनम्रता, वाग्मिता और विद्वत्ता का परिचय देकर उनसे शरण मागी। थोड़े ही समय में उसने कवच्य पद—आप्त पीछे का सम्पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर लिया।

गांधी

गांधी

महात्मा गांधीजी ने दक्षिण अफ्रीका में भारतीयों की घोर दुःखदायक दली—व मनुष्यता के सामान्य अधिकारों से भी वंचित थे। उन्हें तरह-तरह के अनिर्वाक कर देने पड़ते थे। टिकट लेकर भी रेल के पहने या दूसरे दर्जे में वे सफर नहीं कर सकते थे। वे सभी जगहों और सभी मौकों पर दुरदुराए जाते थे। गोरों के सामने उनकी हैमियत, मनुष्य की कान बहे, जानवर की भी नहीं थी। उनके खिलाफ काल कानून बने। उन्हें मायता के मामूली अस्वियारों से भी महकूम किया गया। उन्हें प्रदेश में रहने की मनाही—प्रवेश करने पर रोक लगा दी गई। वे सभी जगह कुली बहे जाते थे। और तो और स्वयं गांधीजी को 'कुली बैरिस्टर' कहा गया। रंगभेद, जातिभेद और घृणा का यह घोरतम रूप भारतीयों के विरुद्ध दक्षिण अफ्रीका में व्याप्त था।

भारतीयों के साथ यह दुःखदायक दगर गांधीजी का खून गोल उठा, पर व खले नहीं। उन्होंने जोश को दबाकर ठंडा कर दिया और समाज उपयोग बुद्धिमत्तापूर्वक मोच-समझकर करने के लिए न्यमित कर दिया। उन्होंने सत्याग्रह का अभिनव अस्त्र आयोजित किया और उसी आंदोलन के लिए वहा स्थित

मारे भारतीयों को तैयार कर लिया।

इस तैयारी के साथ सबसे पहले उन्होंने सत्याग्रह के परिणाम भुगतने की तैयारी कर ली—जेल जाना, यातनाएँ सहना, सजाएँ भोगना, अनशन करना और जान की बाजी लगा देने की पूरी तैयारी उन्होंने सर्वप्रथम खानगी रूप में और पीछे सामूहिक रूप में कर ली।

अपने विचारों की दृढ़ता प्रदर्शित करने के लिए उन्होंने स्पष्ट कहा

“इस समय तो यह बात है। मैंने जो बताया है उससे विरुद्ध यदि सारी दुनिया हो तो भी मुझे निराशा होनवाली नहीं है। यह कोई घमड़ से भरा वचन नहीं है, अपितु स्वयं अच्छे वरों यह मनोरथ है, यही मनोरथ होना चाहिए। बाकी सब गलत है। जिमने आत्मा को जाना नहीं, उसन कुछ नहीं जाना। रावण के उल्हाह का अनुकरण करके हम आत्मा की आर मुटें।’

और फिर अपने उन पत्रों में उन्होंने अपने विचार दृढ़ता का प्रतिपादन और भी स्पष्ट और विस्तृत रूप में किया जो उन्होंने अपने भतीजे मगनलाल और पुत्र मणिलाल गांधी को लिखे

जीवन-प्रभान—पृ० १७६

वि० मगनलाल,

आत्मा के अतिरिक्त सब कुछ क्षणभंगुर है, इस विचार को हर समय दोहराते रहना आवश्यक है। यही नहीं, उससे सम्बन्धित कार्य में सतत सलग्न रहना चाहिए। ज्या-ज्या विचार करता

ह, सत्य और ब्रह्मचर्य की महिमा की कल्पना स मन प्रफुल्लित हो जाता है। ब्रह्मचर्य का और अथ सभी नीतिमत्ता का समावेश सत्य के अन्दर हो जाता है। फिर भी ब्रह्मचर्य का महत्त्व इतना भारी है कि उसका आसन सत्य की बराबरी का सम्यना चाहिए, यह विचार मुझे आया करता है। मुझे दृढ़ विश्वास है कि इन दोनों के द्वारा किसी भी प्रकार की बाधा को दूर किया जा सकता है। वास्तविक बाधा तो हमारा अपना मनोविकार ही है। यदि बाह्य सम्बन्धों पर सुख का लेशमात्र भी आधार हम न रखें तो लोग क्या कहते हैं, यह न सोचकर हमें क्या करना चाहिए, यही हम माचेंगे।

—मोहनदास के आशीर्वाद।

किल डोनन बंसल

२६-११ ६

चि० मणिलाल,

अब रात के ६॥ बजे हैं। बेपटाउन तक अब पाच दिन की मजिल बाकी है। मुझे सीधा (जहाज से) ही जेल जाना होगा, यह सम्भव है इसलिए यह पत्र लिख रहा हूँ। हम आत्मा को किस प्रकार सोज सकें, और किस प्रकार देश-सेवा कर सकें, इसका पहले विचार करना होगा। इनके बाद फिनिक्स क्या है, यह समझाया जा सकेगा। आत्मा को सोजने के लिए सबसे पहले नीति का दृढ़ बनाना चाहिए। नीति का अर्थ है सत्य, ब्रह्मचर्य आदि गुणों का सम्पादन करना। ऐसा करने पर अपने-आप देश-सेवा हो जाएगी।

मानव-द्रोही रंगभेद-जातिभेद

रंगभेद और जातिभेद के शिकार तो गांधीजी दक्षिण अफ्रीका में ही बन चुके थे। उन्हें अपनी पोशाक और भारतीयों के प्रति गारा के द्वारा किए जानवाले अपमान का अनुभव बहा जाते ही हुआ और कदम कदम पर वह भारत से कुली बनाकर लाए गए भारतीयों के प्रति की जानवाली वैश्वजती राष्ट्रीय अपमान के रूप में महसूस करने लग। जिन भारतीयों ने दक्षिण अफ्रीका में गोरा का चीनी का घघा जमाया और जिन्हें शतवती कुली बनाकर गारे ही बहा अपनी स्वायत्तिसिद्धि के लिए ले आए थे वे ही जब उन्हें 'कुली' कहकर अपमानित करने लगे, तो यह बात ममझदार के लिए कसे सहन हो सकती थी? और ता और, अदालतों के घरे में भी गांधीजी को अपनी पगड़ी उतारे जाने और 'कुली बरिस्टर' का सम्बोधन सुनने का बाध्य होना पडा। गास्वामी तुलसीदासजी ने ठीक ही कहा है

“सब ते कठिन जाति अपमाना।”

तो गांधीजी ने उसके अनुसार अपना व्यक्तिगत अपमान ता सहन कर लिया, किन्तु सार भारतीयों के प्रति भेदभाव के और अपमानजनक व्यवहार को वे न सह सके। गाराद्वारा हमले होने और चोट पहुंचने और रेल के डब्बे से निकाले जाने पर भी उन्होंने उम व्यक्तितगत अपमान को सहन कर लिया, किन्तु सभी भारतीयों का अपमानस्वरूप ३ पौण्ड का कर लगाए जान, उनके गोरी आबादी में न रह सकने और प्रदश की सामा में न घुस सकने के कानून, जोकि कानून के उपहासमात्र थे, गांधीजी न सह सके

और उनका मोड़ना उन्हीं हर भारतीय का घम घापित कर दिया। गांधीजी न 'सत्याग्रह' शब्द की रचना भी वही की और वही उसे सबप्रथम अमन में लाया गया। गांधीजी से यह नहीं महन हुआ कि मानव जाति का, चाहे वह भारतीय हो या और कोई, केवल अपने रंग और जाति के लिए ऐसा धार अपमान महन करना पड़े जा मानवता के सबथा विपरीत था। न केवल मानवता के, बल्कि ईश्वरीय विधान के विरुद्ध भी यह एक धारतम अनाचार था। इसी आधार पर उन्होंने सत्याग्रह को दुन्दुभी बजाई जिसे अंत में आदचयजनक सफलता मिली।

दक्षिण अफ्रीका में रहते हुए ही गांधीजी ने अपना भावी जीवन-श्रमनिर्धारित कर लिया था और तदनुसार नैटाल इंडियन कांग्रेस के द्वारा न केवल उपनिवेशवादी गौरा का पर्दाफाश किया, बल्कि भारतीयों पर लग कर, प्रतिबंध, काले कानून और गौरों को मनमानी को आग चलकर कठिन बना दिया।

किंतु दक्षिण अफ्रीका में सत्याग्रह की सफलता के स्वर तक पहुंचाने के पहले गांधीजी का क्या-क्या कष्ट खेलन पडे और उनके साथ भारतीयों को कानून का सहारा लेन से तरार शिष्ट-मण्डल इस्लेण्ड तक ले जाने में क्या क्या कानूनी चाराजाई करनी पड़ी और अंत में एगियायी लागा के विरुद्ध रजिस्ट्रेशन और अगूठा निगानी का कानून जारी करके भारतीयों का उनके जाल में फन जान की स्थिति तक पहुंचना पडा, उनमें स्थिति तमनीरतर हानी गई और सामूहिक सत्याग्रह के द्वारा दक्षिण अफ्रीका की गारो सरकार को मनमानी पारवाई रावन का आदानन शुन कर दिया गया। यह सत्याग्रह की पहली लड़ाई थी। जिन एशि-

गांधी नेताओं को मजिस्ट्रेट द्वारा नाटिस दिया गया वे अपने-आप अदालत में हाज़िर हो गए। उन्हें आडर दिया गया था कि यदि वे भारतीयों के रजिस्ट्रेशन में बाधा डालते हैं तो उन्हें एक अवधि के अन्दर ट्रान्सवाल छोड़ जाना पड़ेगा। यह वाला कानून सभा एशियावासियों के विरुद्ध था इसलिए चीनी भी उसमें आते थे जिनके नेता थे श्री क्विना। जोहासबग में कुल ३०० से ४०० तक चीनी भी रहते थे, पर भारतीयों की तादाद बहुत बढ़ी थी। गांधीजी ने इस वाले कानून के शिकार सभी लोगों का संगठन बना दिया। मजिस्ट्रेट ने सभी एशियायी नेताओं को, जिनमें भारतीय ही अधिक थे, दो दिन से पंद्रह दिन के अन्दर ट्रान्सवाल छोड़ जाना का हुक्म सुना दिया।

मजिस्ट्रेट का हुक्मनामा सुनकर भी कोई ट्रान्सवाल छोड़कर नहीं गया। इसलिए सबको सजा सुनने के लिए फिर बुलाया गया।

किसीन कोई सफाई नहीं दी। यह उसी मजिस्ट्रेट की अदालत थी जिसके सामने गांधीजी बकालत किया करते थे। उन्हें भी दो महीने की सादी कैद की सजा सुना दी गई।

जल में मन्थाग्रहियों का गए खनी एक परवाड़ा ही हुआ था कि गारी सरकार ने सत्याग्रहियों के साथ समझौते की बातचीत शुरू कर दी। भारतीयों ने इसके लिए गांधीजी का नाम लिया जा जेल में थे। उनके पास जनरल स्मट्स ने 'ट्रान्सवाल लीडर' के सम्पादक अलबर्ट काटराइट का भेजा जिहान गांधीजी ने छुलकर बातचीत की। उन्होंने सुलह की शर्तें पेश करके आन्दोलन बन्द कराने का कहा। ये शर्तें जनरल स्मट्स ने ही

तयार की थी—गांधीजी ने उन शर्तों की अस्पष्ट भाषा पर आपत्ति की, पर एक सगोचन के साथ यह कहकर हस्ताक्षर कर दिया कि जेल के बाहर के साथियों से सलाह लिए बिना यह अन्तिम नहीं होगी। समझते का सारास यही था कि भारतीय स्वच्छा में रजिस्ट्रेशन स्वीकार कर लें—कानून के अन्तगत नहीं। यह भी कहा गया कि भारतीय यदि स्वच्छा से रजिस्ट्रेशन स्वीकार कर लेंगे तो सरकार काला कानून रद्द कर देगी। दूम्रे या तीसर दिन गांधीजी को जेल से जनरल स्मटम के पास पहुँचाया गया। जनरल स्मटम ने गांधीजी को उनकी ओर उनक देशवासियों की दृढ़ता के लिए बधाई दी। गांधीजी की तरह जनरल स्मट्स भी एक बैरिस्टर थे। बातचीत के बाद उन्होंने गांधीजी का स्वतंत्र कर वहीं से घर चले जाने की कहा और उनके साथी कदिया को भी, टेलीफोन द्वारा जेल को सूचित कर, छोड़ देने से कह दिया।

टॉल्सटाय फाम

गांधीजी ने न केवल स्वदेशवापसी के लिए, बल्कि समूचे मानव-समाज के लिए अपने विश्वास के अनुसार और मानवमात्र के दुःख पर तरस खाते हुए नाम दिया। उन्होंने देखा कि मनुष्य अपने अत व्यवहार के कारण ही जीवन में दुःखी होता और कष्ट भागता है, इसलिए उन्होंने एक आर जहा अत्याय के प्रति अहिंसात्मक प्रतिरोध का उपाय मानव समाज के नामने रखा, वही जीवन की रचनात्मक विधिवा नी प्रस्तुत की। अहिंसा अफीका का टॉल्सटाय फाम उनमें से एक था।

दक्षिण अफ्रीका सत्याग्रह की लड़ाई च्यूटी और हाथी की लड़ाई थी। भारतीयों के पास न धन बल था, न उतना जागरण, पर उनमें सच्चाई और दृढ़ता थी जिसके बल पर वे आगे बढ़ सकते थे। किन्तु मत्थाग्रहियों के जेल जाने पर उनके परिवार के पालन का प्रश्न सामने आता था और इसके लिए आश्रम जस किसी स्थान की वाछनीयता अनुभव की जा रही थी। सत्याग्रही को उसकी लड़ाई के लिए मुक्त और निश्चिन्त बनानेवाली ऐसी व्यवस्था की बड़ी जरूरत थी।

ऐसे स्थान की खोज थी जहाँ शहरी जीवन की गिचपिच और सकीर्णता न हो। दूसरे, शहर के जीवन में आश्रम-जीवन की सादगी आ भी नहीं सकती थी। तीसरे, ज़रा विस्तृत स्थान होने पर आश्रम में छोटे मोटे हस्तोद्योग भी चल सकते थे। ऐसी दशा में आश्रम का स्थान न तो शहर में होना चाहिए और न शहर से बहुत दूर। फिनिक्स में जहाँ 'इंडियन ऑपीनियन' की छपाई होती थी, कुछ खेती उगाने का काम भी होता था, किन्तु वह स्थान जोहान्सबर्ग में ३०० मील दूर होने के कारण अनुमूल नहीं था। ऐसा स्थान तो ट्रान्सवाल में, जोहान्सबर्ग से बहुत दूर नहीं होना चाहिए था। ऐसा एक स्थान श्री कलेनबर्ग में १९०० एकड़ में खरीदा था और उहाँ वहाँ उम्मे बिना किसी किराये के मत्थाग्रहियों के उपयोग के लिए दे दिया था। इस स्थान में लगभग एक हज़ार फलों के वृक्ष भी थे। यहाँ एक छोटा सा मकान भी बनवाया जिसमें छह व्यक्ति रह सकते थे। यहाँ से एक मील पर ही लाली रेलवे स्टेशन था।

गांधीजी ने यही जगह ट्रान्सवाल फार्म के नाम पर स्थापित

की और इनमें बसनेवाले भारतीय सत्याग्रही गुजराती, तमिल-भाषी, तेलुगुभाषी और उत्तर भारत के हिन्दू मुसलमान पारसी, ईसाई मर्भे थे । उन्होंने अपने उद्योग-बल और विचार-बल से इस आश्रम को भारत का एक छोटा-सा नमूना ही बना डाला जिसमें राष्ट्र की सभी भावनाएँ और स्फूर्तियाँ भी थीं और धीरे-धीरे इन आश्रम में ऐम गृहोद्योग स्थापित हो गए जिससे सत्याग्रहियों के परिवारों का काम अच्छी तरह चलन लगा और सारे आश्रम के अमीर-भारीव एक परिवार की तरह काम करने लगे । बच्चों की पढाई लिखाई की व्यवस्था भी हा गई और एक प्रकार से यह आश्रम अपना काम आर्थिक दृष्टि में खुद चराने लगा ।

जिन दिनों स्व० गोपालकृष्ण गोखले दक्षिण अफ्रीका पहुँचे तो गांधीजी टॉल्स्टॉय फार्म में हा रहते थे और गोखले का वह आश्रम और उनकी संचालन विधि देखकर प्रमन्नता हुई थी ।

प्रथम सत्याग्रह की फलश्रुति

दक्षिण अफ्रीका सत्याग्रह, न्याय और अहिंसा की एक प्रयोगशाला बन गया था जिसका उत्तम परिणाम यह हुआ कि दास-बाल की सीमा में फिर प्रवेश करते ही गांधीजी की गिरफ्तारी निश्चित था, क्योंकि कानून के रूप में परिवर्तन नहीं हुआ था । पहले जा समझौता हुआ था वह अम्यायी था और उनका बाद दक्षिण अफ्रीका की प्रतिबन्धन सरकार का रुख और मन्त हो गया ।

एक परिवार के रूप में बसाने और रखने का प्रयत्न किया गया ।

इस आश्रम में श्री अमृतलाल ठाकर की कृपा में शीघ्र ही एक हरिजन परिवार भी आकर रहने को तैयार हो गया । गांधीजी ने ठाकर बापा को लिख दिया कि आश्रम के अनुसार चलाने का तैयार होने पर ही वह हरिजन परिवार रहा रह सकता है । यह हरिजन परिवार था चम्बरई के एक अध्यापक—ददाभाई, उनकी पत्नी दानी बहन और उनकी छोटी लड़की लक्ष्मी ।

:

करुणा की पगडंडिया

गांधीजी ने जब भारत में रहने का विचार पक्का कर लिया तो पहले-पहल गांधीजी के अपने १८९४ ई० में आरम्भ किए गए आन्दोलन—दक्षिण अफ्रीका के लिए ब्रिटिश सरकार द्वारा स्वीकृत शतवर्दी कुली-प्रथा का अन्त घोषित हो गया जिससे कितनी ही निराशाओं के बीच एक नई आशा का संचार हुआ ।

चम्पारन के निलहे गोरे

उस समय देश में जो खनवाड़ी प्रथा उत्तर बिहार के गरीब किसानों का तग कर रही थी वह थी चम्पारन जिले के किसानों पर निलहे गोरे का घोर अत्याचार । वे अपने गोरे भू-स्वामियों के लिए नील बोनो का बाध्य थे । उन्हें अपनी जोत की जमीन में १५ प्रतिशत क्षत्र में नील की बुवाई अपने गोरे मालिकों के लिए करनी पड़ती थी । हजारों किसानों की इस दुःखी और

मजदूरी का पता देश के पड़े-लिखे बग को बिलकुल न था। राज-कुमार शुक्ल पहले मिमान ये जिह नील की काठी चलानेवाले गौरा का यह अत्याचार सहन नहीं हुआ और उन्होंने वहा के किसानों के कष्ट-महन की कहानी गांधीजी को सुनाई।

शुक्लजी ने गांधीजी को १९१६ की लखनऊ कांग्रेस में देखा तो उन्हें लगा कि जैसे किमाना का कोई उद्धारक उन्हें मिल गया। शुक्लजी गांधीजी को लखनऊ कांग्रेस की छोलदारी में मिले और बोले—“हम लोग के वकील बाबू आपको हम किसानों को सब दुदगा समझा देंगे।”

यह ‘वकील बाबू’ और कोई नहीं, ब्रजकिशोर प्रसाद थे जिन्होंने बाद में चम्पारन में गांधीजी के साथ काम किया और जो उन दिनों बिहार के सावजनिक जीवन की आत्मा थे। श्री राजकुमार शुक्ल उन ‘वकील बाबू’ को गांधीजी के तम्बू में ले गए। उन दिनों के वकीली फगन के अनुसार आनपाका की टाली अचकन और चूड़ीदार पाजामे की पोशाक में थे। गांधीजी पर पहले तो उनका देखकर कोई खास प्रभाव नहीं पडा। उन्होंने समझा कितन ही वकीलों की तरह वे भी किसानों को चूमनेवाला में से एक हागे, किन्तु जब ब्रजकिशोर प्रसाद ने उन्हें चम्पारन की कहानी सुनाई तो गांधीजी ने यही कहा कि “मैं किसानों की स्थिति प्रत्यक्ष देखे बिना कोई भी राय नहीं दे सकता। आप ही कांग्रेस में उनके बारे में प्रस्ताव रखें। राजकुमार शुक्ल कांग्रेस में कुछ मदद चाहत थे। बाबू ब्रजकिशोर प्रसाद ने चम्पारन के किसानों के प्रति महानुभूति का प्रस्ताव रखा जा सर्वानुमति से पारित हो गया।

एक परिवार के रूप में बसाने और रखने का प्रयत्न किया गया।

इस आश्रम में श्री अमृतलाल ठक्कर की कृपा से श्रीमत् ही एक हरिजन-परिवार भी आकर रहने को तैयार हो गया। गांधीजी ने ठक्कर बापा को लिख दिया कि आश्रम के अनुसार चलने को तैयार होने पर ही वह हरिजन परिवार बहा रह सकता है। यह हरिजन-परिवार था बम्बई के एक अध्यापक—दूदाभाई, उनकी पत्नी दानी बहन और उनकी छोटी लड़की लक्ष्मी।

:

करुणा की पगडंडिया

गांधीजी ने जब भारत में रहने का विचार पक्का कर लिया तो पहले पहल गांधीजी के अपने १८६४ ई० में आरम्भ किए गए आन्दोलन—दक्षिण अफ्रीका के लिए ब्रिटिश सरकार द्वारा स्वीकृत शतबन्दी कुली प्रथा का अन्त घोषित हो गया जिससे कितनी ही निराशाजा के बीच एक नई आशा का संचार हुआ।

चम्पारन के निलहे गोरे

उस समय देश में जा रैयतवाड़ी प्रथा उत्तर प्रदेश के गरीब किसानों का तग कर रही थी वह थी चम्पारन जिले के किसानों पर निलहे गोरो का घोर अत्याचार। वे अपने गोरे भूमिस्वामियों के लिए नील बोन को बाध्य थे। उन्हें अपनी जोत की जमीन में १५ प्रतिशत क्षम में नील की बुवाई अपने गारमालिकों के लिए करनी पड़नी थी। हजारों किसानों की इस दुर्दशा और

गांधी

उनकी हालत दिखाना चाहते थे और वे भी उसके लिए उत्सुभ
प।

गांधीजी यह विचार करके उसी दिन मोतिहारी के लिए
रवाना हो गए। बाबू गोरखप्रसाद ने गांधीजी और साथियों का
बरन मकान में ठहराया जो एक सराय-सा बन गया। उन सबके
लिए उनमें मुश्किल स जगह थी। गांधीजी ने उसी दिन सुना कि
मोतिहारी से पाच मील पर एक बसाही के साथ, निलह गोरे
द्वारा बुरा व्यवहार किया गया है। यह निश्चय हुआ कि दूसरे
दिन तड़के ही गांधीजी बाबू घरणीघर के साथ उसे देखने जाएं।
इसके अनुसार गांधीजी अपने साथी सहित हाथी पर सवार होकर
रवाना हो गए। व कोई बाधे रास्ते ही गए हंगे कि पुलिस
कप्तान का एक सदेशवाहक उन्हें वा मिला और बोला कि
रजान साहब न सलाम बोला है। गांधीजी इसका मतलब समझ
ए और घरणीघर बाबू को गन्तव्य स्थान को जान के लिए
घोषण व सन्देशवाहक द्वारा लाई गई भाडे की गाड़ी में बैठ
ए। इसके बाद सदेशवाहक ने गांधीजी को चम्पारन छोड़ जान
का नानिम दिया और उन्हें उनके ठहरने के स्थान तक पहुंचा
दिया। उसने नानिम मिलन की रसीद भी गांधीजी से मागी ता
न्होंने लिखा दिया कि वे अपनी जाच पूरी होने तक जाना नहीं
चाहेंगे। इसके बाद गांधीजी को अदालत का समन मिला, क्योंकि
न्होंने चम्पारन छोड़ जान का आदेश भंग किया था।

उस रात गांधीजी को बाबू गोरखप्रसाद की आवश्यक बातें
और सूचनाएँ देते हुए जागते ही रहे।

नानिम और समन की बात चारा चार फल गई और गांधी-

सुनने को तयारी में लग गए और साथ ही उन्होंने उस डिबीजन के कमिश्नर से मिलना भी जरूरी समझा जिससे वे निलहे गारो के पक्ष की बात भी अच्छी तरह समझ लें। उन्होंने कमिश्नर से मुलाकात करने के लिए समय मांगा और वह मिल गया।

निलहे गारो का एक एमोसिएशन (सघ) था जिसके सेक्रेटरी ने गांधीजी को स्पष्ट शब्दों में कहा कि वे तो एक बाहरी आदमी हैं इसलिए निलहा और उनके असामियों के बीच में पड़ना उनका काम नहीं है, फिर भी अगर उन्हें कोई प्रतिनिधित्व करना है तो वे उसे लिखित रूप में पक्ष कर सकते हैं। गांधीजी ने उससे विनम्रतापूर्वक कहा—“मैं तो अपने को बाहरी आदमी नहीं समझता और मुझे असामियों की, अगर वे चाहे, हालत जानने के लिए जाच करने का पूरा अधिकार है।”

कमिश्नर से मिलने पर उसने गांधीजी को धमकाने की कोशिश की और तिरहुत डिबीजन छोड़ जाने की सलाह दी।

गांधीजी ने अपने सहयोगी कार्यकर्ताओं का इन बातों से परिचित कराया कि शायद सरकार मुझे आगे बढ़ने से रोके और मुझे समय से पहले ही जेल चला जाना पड़े। ऐसी हालत में उनके गिरफ्तार हो जाने पर अच्छा यह हो कि वे मातिहारी में गिरफ्तार हों और अगर सम्भव हो तो वेतिया में। इसलिए यह जरूरी हो गया कि गांधीजी उन दोनों स्थानों को जाएं।

चम्पारन तिरहुत कमिश्नरी का एक जिला है और मातिहारी उसका सदरमुकाम है। राजकुमार शुक्ल का स्थान वेतिया के पास था और आमपास की नील की कीठिया व असामी इसी जिले में सबसे गरीबी की हालत में थे। राजकुमार शुक्ल गांधीजी का

उनकी हालत दिखाना चाहते थे और वे भी उसके लिए उत्सुक थे।

गांधीजी यह विचार करके उसी दिन मोतिहारी के लिए रवाना हो गए। बाबू गोरखप्रसाद ने गांधीजी और साथियों को अपने मकान में ठहराया जो एक सराय-सा बन गया। उन सबके लिए उसमें मुश्किल से जगह थी। गांधीजी न उसी दिन सुना कि मोतिहारी से पाच मील पर एक असाभी के साथ, निलहे गोरे द्वारा बुरा व्यवहार किया गया है। यह निश्चय हुआ कि दूसरे दिन तड़के ही गांधीजी बाबू घरणीघर के साथ उसे देखने जाएं। इसके अनुसार गांधीजी अपने साथी महित हाथी पर सवार होकर रवाना हो गए। वे कोई आधे रास्ते ही गए होंगे कि पुलिस कप्तान का एक सन्देशवाहक उन्हें आ मिला और बोला कि कप्तान साहब ने सलाम बोला है। गांधीजी इसका मतलब समझ गए और घरणीघर बाबू को गन्तव्य स्थान को जान के लिए छोड़कर वे सन्देशवाहक द्वारा लाई गई भाड़े की गाड़ी में बैठ गए। इसके बाद सन्देशवाहक ने गांधीजी को चम्पारन छोड़ जाने का नोटिस दिया और उन्हें उनके ठहरने के स्थान तक पहुँचा दिया। उस नोटिस मिलने की रमीद भी गांधीजी से मागी तो उन्होंने लिखा दिया कि वे अपनी जाच पूरी हान तक जाना नहीं चाहेंगे। इसके बाद गांधीजी को अदालत का समन मिला, क्योंकि उन्होंने चम्पारन छोड़ जाने का आदेश न माना था।

उस रात गांधीजी बा० राजेश्वरप्रसाद की आवश्यक बातें और सूचनाएँ देते हुए जागते ही रहें।

नाटिम और समन की बात चारा और फल गई और गांधी-

जो स कहा गया कि उस दिन मोतिहारी में अभूतपूर्व भीड़ हुई। बाबू गोरखप्रसाद के घर से लेकर अदालत तक वही तिल धरने की जगह नहीं रही। गांधीजी ने तो सारा काम रात को ही करके अपनी अगल दिन की तैयारी कर ली थी। भीड़ में उनके साथी गांधीजी के साथ भी जमे रहे और उनकी पूरी मदद की। भोड़ गांधीजी के पीछे-पीछे लग गई और उनके साथी उस नियंत्रण में रखने लग गए।

अधिकारिया—कलेक्टर, मजिस्ट्रेट, पुलिस कप्तान और गांधीजी के बीच मित्रता की भावना फैल गई। गांधीजी चाहते तो दिए गए नाटिस का कानूनी बचाव कर सकते थे, पर उन्होंने उसे स्वीकार किया और उनका व्यवहार अधिकारियों को ठीक जवा। इस प्रकार अधिकारियों ने देख लिया कि गांधीजी व्यक्तिगत रूप में उनको नाराज नहीं करना चाहते, उनके आदेश को सविनय अवज्ञा करना चाहते हैं। इससे वे टोले पड़ गए और उन्हें परेशान करने के बदले वे उनके आर उनके माथिया द्वारा भीड़ नियंत्रित करने में मदद देने लगे। किन्तु इस दृष्टि से अधिकारियों के लिए यह दशमोय प्रदर्शन था कि उनका अधिकार हिल रहा है। उस समय भीड़ न लागा म से जस समय की भावना ही दूर हा गई थी और वे गांधीजी के प्रेम में वध गए थे। तारीफ की बात तो यह थी कि चम्पारन में गांधीजी का जानता कोई नहीं था। मोल नाले किसान वत ही अनजान थे। चम्पारन वस नौ गंगा के उत्तर आर हिमालय की तराई में होने के कारण नेपाल का पडासा है, इसलिए शेष भारत से अलग चलन सा है। उन भागा में कांग्रेस का जनता ने नाम नहीं सुना था। जिन्होंने

नाम भी नुना था वे कांग्रेस में शामिल होने में हिचकने के और उसके नाम से डर जाने थे। अब उन्हीं कांग्रेस में इस क्षेत्र में प्रवेश कर लिया—और वह भी नाममात्र के लिए नहीं, मज्जे अर्थात् में।

अपने साथियों की राय में गांधीजी कांग्रेस के नाम से कुछ नहीं कर रहे थे—असल में काम की जड़रत थी, नाम की नहीं। इसलिए कांग्रेस की ओर में वहां किसीको नहीं भेजा गया। उन किसानों के पास राजेंद्र दाबड़ जैसे एकान्ती आदमी को कहा-रहा तब भेजा जाता, फिर भी सबमें गांधीजी के प्रति ऐसी भावना जगी जस कोई उनका युग-युग का मित्र अचानक जा पहुंचा हो। गांधीजी को किसानों के उस सम्मेलन में जैसे भगवान, अहिंसा और सत्य के दर्शन करा दिए।

इसका कारण और कुछ नहीं, उन किसानों के प्रति गांधीजी की गहरी करुणा की भावना थी और था उनका अहिंसा में अडिग विश्वास।

चम्पारन उस दिन गांधीजी के जीवन में अविस्मरणीय घटनास्थल बन गया और वहां के किसानों के लिए वह दिन जैसे स्वर्ण दिवस के रूप में आ गया।

कानून के अनुसार गांधीजी पर मुकदमा चला, पर सच्चा मुकदमा तो सरकार के विरुद्ध था। कमिश्नर तो गांधीजी का जाल में फासकर अदालत के सामने रखने में सफल हुआ, पर गांधीजी इस बात में सफल हुए कि युग-युग का पीड़ित किसान, जिनकी बदमरी पुकार बाहर नहीं जा सकती थी और जिन प्रताड़ित करनेवाले अपने इस कृत्य का रहस्य बनाए रखने

में सफल हो रहे थे, एक प्रबल मण्डाफोड के रूप में जनता के—
संसार के सामने प्रकट करने को बाध्य हो गए ।

गांधीजी ने अपने को कमरवार कबूल करते हुए अदालत के
सामने उस दिन जो वक्तव्य दिया वह इतिहास में सदा पठनीय
और मननीय बना रहेगा ।

वक्तव्य इस प्रकार था

“अदालत की आज्ञा से मैं एक सक्षिप्त वक्तव्य यह दिखाने
के लिए देना चाहूंगा कि मैंने प्रकटतया भारतीय दण्डाज्ञा की
१४४वीं धारा का आदेश भंग प्रकट करनेवाला ऐसा गम्भीर
कदम क्यों उठाया । मेरी विनम्र राय में यह स्थानीय शासन और
मेरे बीच मतभेद की बात है । मैंने इस क्षेत्र में इस उद्देश्य से
प्रवेश किया है कि मैं मानवता और राष्ट्रीयता की सेवा करूँ ।
मैंने ऐसा इसलिए किया कि रंगतों की ओर से एक आवश्यक
आमंत्रण इस आशय का गया था कि उनके साथ मिलकर लोग
समुचित व्यवहार नहीं कर रहे हैं । मैं समस्या का अध्ययन किए
बिना कोई मदद नहीं कर सकता था । इसलिए मैं, यदि सम्भव
हो तो, शासन और निलहो की मदद से इसके अध्ययन के लिए
आया । मेरा कोई और उद्देश्य नहीं है और मैं यह विश्वास नहीं
कर सकता कि मेरे आने से सावजनिक शांति भंग होने या
किसीकी जान जाने का खतरा है । ऐसे मामला में मैं काफी
अनुभव रखने का दावा रखता हूँ । किंतु शासन ने इसमें भिन्न
विचार किया है । मैं उसकी कठिनाइयाँ को समझता हूँ और मैं
यह भी स्वीकार करता हूँ कि वह प्राप्त सूचना के अनुसार ही
कायदाही कर सकता है । कानून को मान्य करनेवाले नागरिक के

स्प मे मेरी पहली महजवृत्ति दिए गए आदेश का पालन करने की होती, पर मैं ऐसा करता तो मैं, जिनके लिए आया हूँ, उनके प्रति हिंसा करता। मैं महसूस करता हूँ कि मैं उनके बीच रहकर ही उनकी सेवा कर सकता था। इसीलिए मैं स्वेच्छापूर्वक अवकाश ग्रहण कर चला नहीं गया। वक्तव्यों के इस नघप में मैं अपने का उनमें अलग हटाए जाने की जिम्मेदारी गायन पर ही डाल सका। मैं इस तथ्य से पूर्णतः अवगत हूँ कि भारत में मावजनिक जीवन व्यतीत करनेवाले व्यक्ति को, ऐसी स्थिति में जिसमें मैं हूँ, कोई मितान पदा वर्ग में बड़ी मावधानी दिखानी चाहिए। मेरा दृढ़ विश्वास है कि जैसे पेचीदा सविधान के अंतगत हम रह रहे हैं, आत्मगौरववाले व्यक्ति के लिए, ऐसी परिस्थितियों में जैसी मेरे सामने हैं एकमात्र सुरक्षित और प्रतिष्ठाजनक माग वही है जिनका अवलम्बन मैं करना चाहता हूँ—अर्थात् बिना विरोध आदर्शनग के दण्ड के सम्मुख आत्मसमर्पण।

‘ मैं यह वक्तव्य सजा से किसी प्रकार प्राण या मार्जन प्राप्त करने के लिए नहीं, बल्कि यह दिग्मान के लिए दूँगा हूँ कि मैं अपने ऊपर लगाई गई अधिकारियों की आदर्शना का भग उनके प्रति अनम्मान प्रकट करने के लिए नहीं, बल्कि उस उच्चतर अस्तित्व के विधान के—आत्मा की आवाज के अनुसार किया है।”

मजिस्ट्रेट और सरकारी वकील इस वक्तव्य से हिन उठे और उन्होंने आदर्शय-मन्व्य हा फं मला म्थगित कर दिया। इस बीच गांधीजी न बाइमराय, पटना के मित्रों और प० मदनमोहन मानवोद्य आदि को तार द दिए।

किन्तु इसके पहले कि अदालत गांधीजी को सजा सुनाए, लेफ्टिनेंट गवर्नर के आदेशानुसार मजिस्ट्रेट ने गांधीजी को सूचित किया कि सरकार ने उनके विरुद्ध मुकदमा वापस ले लिया है। कलक्टर ने गांधीजी का निलहो सम्बन्धी आवश्यक कागजात दिखाने की सन्नद्धता प्रकट की और गांधीजी के लिए सरकारी अधिकारियों से मिलने और शिकायत-सम्बन्धी मामलो से सम्बन्धित अभिलेख देखने की छूट मिल गई।

इस प्रकार भारत ने सविनय-अवज्ञा का यह प्रथम प्रोष पाठ सीखा।

खेडा-सत्याग्रह

उन दिनों गुजरात के खेडा जिले में फसल न होने के कारण भयंकर अकाल पड़ा और वहाँ के पाटीदारों ने दुर्भिक्ष की दशा देखकर उस साल लगान न देने का निश्चय किया।

जसी स्थिति थी उसकी श्री अमृतलाल ठक्कर पहले ही वहाँ के कमिश्नर से उसके बारे में बातचीत कर चुके थे, श्री मोहनलाल पण्ड्या और शंकरलाल पारिख इस संधप में उतर पड़े थे और श्री विठ्ठलभाई पटेल और सर गावलदास काहनदास पारेख की मदद से दम्बई व्यवस्थापिका परिषद् में आन्दोलन उठा चुके थे। इस मिलसिले में गवर्नर से मिलने एक से अधिक शिष्टमण्डल भी जा चुके थे।

उन दिना गांधीजी गुजरात सभा के अध्यक्ष थे। सभा ने भी सरकार के पास इस सिलसिले में प्राथनापत्र और तार भेजे और कमिश्नर द्वारा की गई वैद्मजती और धमकी भी सह ली। इस

अवसर पर अधिकारियों का यह व्यवहार ऐसा उपहासास्पद और अगोमनीय था जिसपर अब विश्वास भी नहीं किया जा सकता ।

किमाना की माग तो बिलकुल सीधी सादी थी और वह इतनी नरम थी कि उसे आमानी में स्वीकार्य बनाया जा सकता था । भूराजस्व वानून के अनुसार अगर फसल की पैदावार चौथाई या इसमें भी कम होता किमान पूरे साल के लगान की माफी का दावा कर सकता है । सरकारी आँकड़ा के अनुसार पैदावार चौथाई में अधिक बढ़ी गई—दूरी और किसानों का यह कहना था कि वह चौथाई से कम थी । सरकार किसानों की यह बात सुनने का तैयार नहीं थी और इसके बार में मध्यस्थता का अपनी शान के खिलाफ ममथता थी । आधिर सनी निवेदन-आवदन असफल हो गए । गांधीजी ने अपने साधियों की सलाह से पाटीदारा का मत्वाग्रह करन की सलाह दी ।

मेडा के स्वयंसेवकों के सिवा इस आन्दोलन में गांधीजी के मुख्य साथी सब्शी बल्लभभाई पटेल, गकरलाल बकर, श्रीमती अनुमूया यहन, इन्दुलाल याज्ञिक और महादेव देमाई आदि थे । श्री बल्लभभाई पटेल को इस आन्दोलन में सम्मिलित हान के लिए अपनी अच्छी और शानदार तथा बर्द्धित बकालत छोड़ देनी पड़ी जो बाद में वे फिर उस जारी ही न कर सके ।

उस आन्दोलन का प्रधान कार्यालय नडिजाद बनायाधम म रगा गया क्योंकि गार आन्दोलन-मचालन के लिए यही बड़ा जगह अत्यन्त नती मितो ।

सत्याग्रहियों को निम्नलिखित प्रतिज्ञापत्र पर हस्ताक्षर करने पड़

“यह जानते हुए कि हमारे गांधी को पैदावार रुपये में चार आन से कम है, हमने सरकार से अनुरोध किया कि इस आनवाले वष तक लगान माफ कर दिया जाए, किन्तु सरकार ने हमारी प्रार्थना स्वीकार नहीं की। इसलिए हम निम्नलिखित व्यक्ति इस प्रतिज्ञापत्र द्वारा यह घोषित करते हैं कि हम अपनी इच्छा से सरकार का इस वष का पूरा या बाकी लगान नहीं अदा करेंगे। सरकार जो भी कानूनी कायवाही करना ठीक समझ वह हम करन देंगे और उस लगान न देने के परिणाम का खुशी खुशी भोग लेंगे। हम अपनी जमीन जब्त हो जाने देंगे, पर स्वेच्छा से लगान देकर अपने मामले को झूठा समझा जाना नहीं स्वीकार करेंगे, न अपने आत्मगौरव को खोएंगे। किन्तु यदि सरकार पूरे जिले में लगान की दूसरी किस्त वसूल करना बंद कर देगी तो हममें से जो अदा करने योग्य हैं वे पूरा या बाकी लगान चुका देंगे। जो लोग देने के लायक हैं उन्होंने अब तक अदायगी इसलिए रोक रखी है कि अगर वे अदा कर देंगे तो अपक्षाकृत गरीब रयत डरकर अपनी खल सम्पत्ति बेच देगी और कज लेकर लगान भर देगी और इस तरह अपने आपको कष्ट में डाल लेगी। ऐसी परिस्थिति में हम महसूस करते हैं कि गरीबों के लिए ऐसा वा भी कतव्य है कि जो अदा कर सकते हैं कि वे भी लगान रोक रखें।”

खेडा सत्याग्रह चम्पारन की तरह सुदूर बान में स्थित स्थान का आन्दोलन नहीं था। उसमें सारे गुजरात और गुजरातियों

को दिनचर्या थी और समाचारपत्रों ने उसकी घटनाएँ विन्ता से प्रकाशित कीं। जा सम्पन्न थे उन्होंने इसने लिए धन दिया। बम्बई के व्यापारियों ने आर्थिक दृष्टि से इस आन्दोलन का काफी आग बढ़ाया।

मेडा सत्याग्रह में सम्मिलित होनेवाले अमीर-गरीब सभी का अपना जीवन मादा बनाना पड़ा। उन्होंने अपने जीवन का डग बदल दिया। पाटीदार किसानों के लिए भी यह लड़ाई नई थी। ऐसी दशा में सत्याग्रहियों को गाव-गाव जाकर किसानों को सत्याग्रह के मिदालन समझाने पड़ते थे।

मूलतः यह था कि किसानों का इस आन्दोलन में निमग्न बना दिया। वे समझ गए कि सरकारी अधिकारी मालिक नहीं, प्रजा के मेबर हैं क्योंकि आन्ध्र लगान या कर बढ़ाकर देनेवालों के धन से ही तो उनका तनखाह दी जाती है। फिर भी उन्हें इन बातों को अच्छी तरह समझाया गया कि सरकारी अधिकारियों में अपने विरोधी मनाभाव प्रकट करते हुए वे विनमता को हाथ से न जान दें।

आरम्भ में लोग न बड़ा साहस दिखाया, फिर भी सरकार ने भय वाशवाही नहीं की, पर जब सरकार ने देखा कि किसान बराबर मरने और दूढ़ बने हुए हैं तो उसका क्रोध-अमीन उनके जानवर और अन्य चल सम्पत्ति, जो भी हाथ में आई, बेचने लग। जुमनि के नोटिस दिए गए और कुछ सखी फसलें भी मुक कर ली गई। इससे किसान घबराए और उनमें से कुछ ने डरकर बकाया चुका दिया और कुछ ने अधिकारियों को मुक करने की सुविधा दे दी, किन्तु कुछ तो अन्न नक नहन के लिए बरबर बस चुके थे।

आन्दोलन का अतः सहसा हो जाने से ऐसा लगा कि लोग धक्कर उठ गए हैं, फिर भी गांधीजी को इससे खुशी ही हुई, क्योंकि वे सत्याग्रह आन्दोलन को जिस मुद्दरता से चलाना चाहते थे वैसे नहीं चल रहा था।

फिर भी खेडा के इस सत्याग्रह आन्दोलन से एक बड़ा लाभ यह हुआ कि शिक्षित वर्ग और नगरवासियों का सम्पर्क गांव के किसानों से हो गया। लोगो में त्याग की भावना आई। बहुत बड़ी बात यह हुई कि सरदार वल्लभभाई पटेल राष्ट्रीय आन्दोलन में सदा के लिए आ गए। बारडोली तालुका का नाम सारे भारत में विख्यात हो गया। पाटीदार किसानों में अभूतपूर्व चेतना जाग्रत हुई। लोगो ने इस सत्याग्रह से यह पाठ सीखा कि उनकी मुक्ति अपने ही हाथ में—अपने ही कष्ट-सहन और त्याग में निहित है।

नौआखाली और बिहार

गांधीजी न अभी तक तो यही सुना था कि नौआखाली (पूर्व बंगाल) में मुसलमान बलकत्ता के दगे का बदला लेने के लिए हिंदुओं का लूट मारकर उनकी सम्पत्ति स्वाहा कर रहे हैं, पर जब उन्हें यह मवाद मिला कि अब वहां हिंदू स्त्रियों की वेइज्जती भी की जा रही है और जो धर्मान्तर स्वीकार नहीं कर रहे हैं, उन्हें सीधे मौत के घाट उतारा जा रहा है, तब उनसे नहीं रहा गया। उन्होंने शरत बास के अलावा मतीशचन्द्र दासगुप्त, उनकी पत्नी हमप्रभा देवी और श्री सतीनमेन को नौआखाली इस शत पर जान को कहा कि यदि वे उनके कहन से नहीं, बल्कि अपनी

इच्छा म मौत के मुह मे जाने को तैयार हो तो जाए ।

किंतु इन सबका जाने क लिए कहकर नी गांधीजी चुप नहीं बटे और जब उह उपर्युक्त टग के सदेश मिले तो उहोन नाआखाली का जान की तैयारी कर ली । उहोन प्रार्थना सभा मे बहा—“मरना ही हा ता वीरतापूवक मग्ना चाहिए ।” भूपाल और बिबरजन नामक दो और कायकर्ताओ ने उनके इम आदेश का पालन बडी निर्भीकता के साथ किया पर गांधीजो उनमे नहीं थे जो दूसरो को तो मरने को आगे भेज दें और खुद पीछे रह ।

जब उहाने नाआखाली जान की तैयारी बर ली और ‘करो या मरो’ का मंत्र अपने कार्यकर्ताओ को दे दिया तो अमरीकी पत्रकार प्रेस्टन ग्रावर ने उनसे मिलकर पूछा—“क्या मुसलमान आपकी वान सुनेगे ?”

गांधीजी ने तुरत जवाब दिया—‘ मैं इस आशा से नहीं जा रहा हू कि व मेरी बात मान ही लेंगे किन्तु ऐसी आशा करना मेरा अनव्य है । कनव्य पालन म भगवान भी सहायक होता है ।’

“परन्तु भारत मे इस तरह के दगे बच गान्न हगि ?” उनन फिर पूछा ।

“जब यहा मे अग्रजो का प्रभाव दूर हो जाएगा, कयोकि अमो तब ता दाना पदा सहायता के लिए अग्रजा की ओर देख रह हैं ।”



गांधीजी एन द्रष्टा और अमलो आदमी की हैसियत से अपने

कतव्य का निश्चय कर हिंसा क्षेत्र नोआखाली जाने को अपनी छाटी सी टुकड़ी के साथ तैयार हो गए ।

गांधीजी एक छोटी-सी टुकड़ी साथ ले मसीहा की भांति निकल पड़े और सर स वफन वाघकर ऐसे लोगों के बीच घुस पड़े जो करुणा का नाम नहीं जानते । किंतु निर्भय, निडर गांधी मत्त और प्रेम के शक्तिशाली अस्त्र के बल पर आगे बढ़ते जा रहे थे । उन गुमराहों की राह में आन पर उन्हें अपने साथियों के प्राणों में हाथ घोना पड़ सकता है, इस बात का विचार उन्होंने क्षण भर के लिए भी नहीं किया । मानव जाति की एकता, समानता और भेदभावहीनता के लिए उन्होंने सबस्व की बाजी लगा दी ।

किंतु गांधीजी सलाहकारों और पाश्वर्तियों की बहकान-वाली बातें नहीं सुनते थे । एक बार निश्चय हो जाए कि यह काम करना है, फिर उन्हें कोई शक्ति नहीं रोक सकती थी । उन्होंने तो पहले ही घापणा कर दी थी कि 'हिंदू मुस्लिम एकता के लिए मेरी अहिंसा की कठोरतम परीक्षा हागी ।' फिर उन्होंने यात्रा के दरम्यान अपनी मकूरप परिणति को इन शब्दों में व्यक्त किया—“जिस वाय में मैं यहा लगा हुआ हू, सम्भव है वही मेरा अंतिम काय हो । यहा से यदि मैं जीवित और अक्षत लौटा तो मेरा पुनजन्म होगा । मेरी अहिंसा की परीक्षा जसी यहा हो रही है वंसी कमी नहीं हुई थी ।”

इस प्रकार गांधीजी उस काम में जुट गए थे जिसका हाथ में लेने की शक्ति दश में न किसी सन्ध्या में रह गई थी, न व्यक्ति में । वह गांव गांव, घर घर जाकर साम्प्र दायिक विद्वेष शान्त कर रहे थे

और मुस्लिम लोग से प्रभावित साम्प्रदायिक विद्वेषाग्नि को बुझाने का निश्चय कर चुके थे । उनकी इस यात्रा के विचार में, धर्मांध मुसलमान अपनी करतूतों पर पानी पानी हो रहे थे ।

उधर तो गांधीजी नाआखाली में मानवता के धोरतम जुल्मों का मकाबला करन पहुंचे थे और इधर बिहार से मुस्लिम लीगों मुसलमानों ने उन्हें पत्र लिखने शुरू किए कि बिहार में मुसलमानों पर हिन्दुओं द्वारा ढाए गए जुल्म बड़े ही अमानुषिक, बर्बर और असहनीय हैं, इसलिए आप (गांधीजी) मानवता की सेवा करना चाहते हैं तो शीघ्र ही बिहार पहुंचें । जिला मुस्लिम लीग मुंगेर (बिहार) के मंत्री ने तो गांधीजी को लिखा— 'बिहार में मुसलमानों पर हिन्दुओं ने जो अत्याचार किए हैं उनका मुकाबला इतिहास का कोई जुल्म नहीं कर सकता ।' साथ ही अलीगढ़ के एक मुसलमान वकील ने तो यहाँ तक लिख डाला— "आपके (हिन्दू) समुदाय के लोगों द्वारा, आपका भय त्यागकर 'मारो या मरो' के उपदेश से ही कलकत्ता जैसा भयकर हत्याकाण्ड हुआ है और उसके बाद बिहार में हो रहा है । अगर आप हिन्दू-मुस्लिम एकता के सचमुच हामी हैं तो आपको वहाँ (बिहार) जाना चाहिए जहाँ आपके समुदायवाले हमला कर रहे हैं ।"

इस प्रकार नोआखाली का शान्ति मिशन मुसलमान नेताओं, मुस्लिम लीगियों और अयो की आंखों में काटे की तरह चुमन लगा । मुस्लिम लोग तार खाए बठी थी । "शहीद मुहरावर्दी से लेकर फजलुल हक तक सभी अपने-अपने स्वायत्त साधन में लग गए । फजलुल हक तो गुल्लम-गुल्ला बहने लगे— "गवर्नमण्ट मेरे हाथ में होती तो मैं मुहरावर्दी की तरह गांधीजी के

कतव्य का निश्चय कर हिंसा क्षेत्र नोआखानी जाने को अपनी छोटी-सी टुकड़ी के साथ तैयार हो गए ।

गांधीजी एक छोटी-सी टुकड़ी साथ ले मसोहा की भाति निकल पड़े और सर स कफन बाधकर ऐसे लोग के बीच घुस पड़े जो कुरुणा का नाम नहीं जानते । किन्तु निर्भय, निद्वन्द्व गांधी सत्य और प्रेम के शक्तिशाली अस्त्र के बल पर आगे बढ़ते जा रहे थे । उन गुमराहों की राह में आने पर उन्हें अपने साथियां क प्राणों से हाथ धोना पड़ सकता है, इस बात का विचार उन्होंने क्षण भर के लिए भी नहीं किया । मानव जाति की एकता, समानता और भेदभावहीनता के लिए उन्होंने सबस्व की बाजी लगा दी ।

किन्तु गांधीजी सलाहकारों और पादवर्तियों की बहकाने वाली बातें नहीं सुनते थे । एक बार निश्चय हो जाए कि यह काम करना है, फिर उन्हें कोई शक्ति नहीं रोक सकती थी । उन्होंने तो पहले ही घोषणा कर दी थी कि "हिंदू मुस्लिम एकता के लिए मेरी अहिंसा की कठोरतम परीक्षा होगी ।" फिर उन्होंने यात्रा के दरम्यान अपनी सकल्प परिणति को इन शब्दों में व्यक्त किया— "जिस काय मे मैं यहां लगा हुआ हू, सम्भव है वही मेरा अन्तिम काय हो । यहां स यदि मैं जीवित और अक्षत लौटा तो मेरा पुनजन्म होगा । मेरी अहिंसा की परीक्षा जैसी यहां हो रही है वसी कभी नहीं हुई थी ।"

इस प्रकार गांधीजी उस काम में जुट गए थे जिसका हाथ में लेने की शक्ति दश में न किसी सम्या में रह गई थी, न व्यक्ति में । वे गांव गांव, घर घर जाकर साम्प्र दायिक विद्वेष शान्त कर रहे थे

आर मुस्लिम लोग ने प्रभावित साम्प्रदायिक विद्वेषाग्नि को बुझाने का निश्चय कर चुके थे। उनकी इस यात्रा के विचार में, धर्मांध मुसलमान अपनी करतूतों पर पानी-पानी हो रहे थे।

उधर तो गांधीजी नोआम्वाली में मानवता के धोरतम जुल्मा का मुकाबला करने पहुंचे थे और दर बिहार से मुस्लिम लीगी मुखलमानों ने उन्हें पत्र लिखने शुरू किए कि बिहार में मुसलमानों पर हिन्दुओं द्वारा ढाए गए जुल्म बड़े ही अमानुषिक, बर्बर और असहनीय हैं, इसलिए आप (गांधीजी) मानवता की सेवा करना चाहते हैं तो शीघ्र ही बिहार पहुंचें। जिला मुस्लिम लीग मुगेर (बिहार) के मंत्री ने तो गांधीजी को लिखा— 'बिहार में मुसलमानों पर हिन्दुओं ने जो अत्याचार किए हैं उनका मुकाबला इतिहास का कोई जुल्म नहीं कर सकता।' साथ ही अलीगढ़ के एक मुसलमान वकील ने तो यहाँ तक लिख डाला— "आपके (हिन्दू) समुदाय के लोग द्वारा, आपका भय त्यागकर 'मारो या मरो' के उपदेश से ही बलवत्ता जमा भयकर हत्याकाण्ड हुआ है और उसके बाद बिहार में हो रहा है। अगर आप हिन्दू-मुस्लिम एकता के सचमुच हामी हैं तो आपको वहाँ (बिहार) जाना चाहिए जहाँ आपके समुदायवाले हमला कर रहे हैं।"

इस प्रकार नोआम्वाली का शान्ति मिशन मुसलमान नेताओं, मुस्लिम लीगियों और अरबों की आत्मा में काट की तरह चुभने लगा। मुस्लिम लीग तार मार बठी थी। "ग़हीद मुहरावर्दी से लेकर फजलुल हक तक सभी अपने-अपने स्वायत्त माधन में लग गए। फजलुल हक तो मुस्लिम-मुल्ता कहने लग— "गवर्नमण्ट मेर हाथ में हानी तो मैं मुहरावर्दी की तरह गांधीजी को

नोआखाली में उपदेश करने की छूट न देता।" उधर मुसलमानों में तो वे (फजलुल हक) अपनी इस्लाम हितैषिता की बातें कर रहे थे और इधर तार देकर गांधीजी से मिलने के लिए भी पहुंच गए। बातों-बातों में उन्होंने (फजलुल हक ने) अपने आपका पर्दा फासा कर दिया।

आखिर गांधीजी बिहार पहुंच गए और वहां डा० सयद महमूद, प्रो० अब्दुलवारी से मिलकर डा० महमूद के घर ठहरे। कांग्रेस प्रेसीडेंट राजेद्रवावू उन्हें डा० महमूद के घर पर ही मिलने गए। उन्होंने गांधीजी का बताया कि बिहार में लोगों को अपने किए पर पछतावा नहीं है, क्योंकि उनका ख्याल है कि बिहार ने बंगाल को बचा लिया है।

श्रीर अन्त में दिल्ली

बिहार में गांधीजी का नाम पूरा भी नहीं हुआ था कि दिल्ली में उपद्रव शुरू हो गया और हिंदू-मुसलमान एक-दूसरे के खून के प्यासे हो गए—माम्प्रदायिक बमनम्य इतना ऊपर उछला कि जिसमें जीवन-रक्षक चिकित्सकों तक की हत्या होने लगी। दशा इतनी खराब हुई कि सरदार बल्लभभाई पटेल ने गांधीयावाद जाकर गांधीजी को वहीं ट्रन से उतार लिया और दिल्ली जक्शन रेलवे स्टेशन पर नहीं आने दिया।

दिल्ली पहुंचकर गांधीजी ने सदा के अनुसार अपनी प्रायश्चित्त-समा में प्रवचन देना शुरू किया और वे उसमें रोज हिंदू मुस्लिम एकता पर जोर देते हुए उपदेश करने लगे। यहाँ तक कि जिस दिन (३० जनवरी, १९४८ को) उनकी हत्या हुई उसके एक दिन

पहले (२६ जनवरी, १९४८ को) उन्होंने प्रायना-सभा में जो भाषण किया उसमें उन्होंने स्पष्ट कहा

“भाइयो और वहनो,

मेरे सामने कहने की चीज तो काफी पड़ी है, उनमें से जो आज के लिए चुननी है चुन ली है। पन्द्रह मिनट में जितना कह सकूंगा, कहूंगा।

एक बात तो देख रहा हूँ कि थोड़ी देर हो गई है—यह होनी नहीं चाहिए थी। सुशीला बहन बहावलपुर चली गई हैं। बहावलपुर में आदमी दुखी हैं। उनको देखने के लिए चली गई हैं—दूसरा अत्रिबार तो कोई है नहीं, और न हो सकता था। फ्रेण्ड्स सर्विस के लोनली त्रास के साथ चली गई हैं। फ्रेण्ड्स यूनिट में किसीको भेजने का इरादा मैंने किया था, ताकि वह वहा लोगों को देखे, मिले और मुनको वहा के हाल बता दे। इस वक्त सुशीला बहन के जाने की बात नहीं थी, लेकिन जब सुशीला बहन न सुन लिया तो उसने मुझसे कहा कि इजाजत दे दो तो मैं त्रास साहब के साथ चली जाऊँ। जब वह नोआखाली में काम करती थी तब से यह उनका जानती थी। वह आखिर कुशल डाक्टर है और पजाब के गुजरात की है। उसने भी काफी गवाया है, क्योंकि उसकी तो वहा काफी जायदाद है। फिर भी दिल में जहर पैदा नहीं हुआ है। तो उसने बताया कि मैं वहा जाना चाहती हूँ, क्योंकि मैं पजाबी बाली जानती हूँ, हिन्दुस्तानी जानती हूँ, उर्दू और अंग्रेजी भी जानती हूँ, तो मैं वहा त्रास साहब का मदद दे सकूंगी। तो मैं यह मुनकर मुग हो गया। वहा सतरा तो है, लेकिन उसने कहा कि मुनका क्या सतरा है, एसा डरती ता नोआखाली क्यों

जातो ? पञ्जाब मे बहुत लोग मर गए हैं, बिल्कुल मटियामेट हो गए हैं, लेकिन मेरा ता ऐसा नहीं है, खाना पीना सब मिल जाता है, ईश्वर सब करता है। अगर आप भेज दें और फ्रांस साहब मेरे को ले जाए ता मैं वहा के लागो का देख लूगी। तो मैंने फ्रांस साहब से पूछा कि क्या आपके साथ मुशीला बहन का भेजू ? तो वे खुश हो गए और बूटा कि यह ता बडी अच्छी बात है। मैं उनकी माफन दूसरो से अच्छी तरह बातचीत कर सकूंगा। मित्र वग मे हिन्दुस्तानी जाननेवाला कोई रह ता वह बडी भारी चीज हा जाती है। इससे बेहतर क्या हो सकता है। वे रेडक्रास के हैं। रेडक्रास के माने यह हैं कि लडाई मे जो मरीज (घायल) हो जात हैं उनको दवा देने का काम करना। अब तो दूमरा-तोसरा भी काम करते हैं। ता डा० मुशीला फ्रांस साहब के साथ गई है या डा० मुशीला के साथ फ्रांस साहब गए हैं, यह पेचीदा प्रश्न हो जाता है। लेकिन कोई पेचीदा है नहीं, क्याकि दोना एक-दूसरे के दोस्त हैं, मोहब्बत करते हैं। वे सेवा नाव से गए हैं, पैसा कमाना तो है नहीं। वे जो देखेंगे मुझे बताएंगे और मुशीला बहन भी बताएंगी। मैं नहीं चाहता कि कोई ऐसा गुमान रखे कि वह ता डाक्टर है और फ्रांस साहब दूसरे हैं। कौन ऊचा है कौन नीचा है, ऐसा कोई भेदभाव न करें, लेकिन फ्रांस साहब, उनके साथ औरत है तो औरत को आगे कर देत हैं और जपन को पीछे रखते हैं। आखिर वे उनके दोस्त हैं। मैं एक बात और कह देना चाहता हू कि नवाब साहब ता मुझको निपत रहत हैं। मुझका कई लोग पूछ बात भी लिखते हैं ता उसे मानने का मेरा क्या अधिकार है। मैंने सोचा कि मुझको क्या करना चाहिए। तो वहावलपुर के जो लोग आए

हैं उनको बता दू कि वे वहा से आएंगे तो मुझको सब बात बता देंगे ।

अभी वन्नु के भाई लोग मेरे पास आ गए थे—गायद चालीस आदमी थे । वे परेगान तो हैं, लेकिन ऐसे नहीं है कि चल नहीं सकते थे । मैं उनसे कहा कि वे जो कुछ कहना है, ब्रजकिशन-जी मे कह दें । वे सब भले आदमी हैं । उन्हें गुस्से से भरे होना चाहिए था, लेकिन फिर भी वे मेरी बात मान गए । उनमें एक भाई ने गुस्से में कहा—‘आप बड़े हैं, महात्मा हैं, तो क्या, हमारा काम तो बिगाड़ते ही हो । तुम हमको छोड़ दो—भूल जाओ । जाओ ।’ जब मैंने पूछा कहा जाओ तो कहा—‘हिमालय जाओ ।’

मैंने कहा—‘मैं हिमालय की शान्ति नहीं चाहता—मैं तो अशान्ति में से शान्ति चाहता हू, नहीं ता उस अशान्ति में मर जाना चाहता हू । मेरा हिमालय यही है । हा, आप सब हिमालय चले तो मुझका भी साथ लेते चलें ।’

इसके बाद गांधीजी ने अपने प्रवचन को जारी रखते हुए कहा—‘आज एक सज्जन आए थे । उनका नाम तो मैं भूल गया । उन्होंने किमाना की बात की । मैंने कहा—‘मेरी चले तो हमारा ग़रब-जनरल किसान हागा, बड़ा बज़ीर किसान होगा ।’

प्रसंग बदलते हुए उन्होंने फिर कहा—‘मद्रास में गुराक की तगो है । मद्रास-मरार की तरफ से दूत श्री जयरामदास दौलतराम के पास आए थे कि उस सूबे के लिए अन्न देने का बन्दोबस्त करें । मुझे मद्रासवाला के इस रग से दुस्त होता है । मैं मद्रास के लोगों को समझाना चाहता हू कि वे अपने ही सूबे में मूगफली, नारियल और दूसरे खाद्य पदार्थों के रूप में काफी गुराक पैदा कर सकते हैं । मद्रासिया को मैं अच्छी तरह से जानता हू

दक्षिण अफ्रीका में उस प्रात के सभी भाषावाले हिस्सों के लोग मेरे साथ थे। सत्याग्रह बूच के समय उन्हें रोजाना के राशन में सिर्फ डेढ़ पौण्ड रोट्टी और एक औंस शक्कर दी जाती थी। मगर जहा कहीं उन्होंने रात को डरा डाला, वहा जंगल की घास में से खाने लायक चीजें चुनकर मजे से गाते हुए उन्होंने पकाकर मुझे अचरज में डाल दिया। ऐसी सूझ-बूझवाले लोग कभी लाचारी कैसे महसूस कर सकते हैं? यह सच है कि हम सब मजदूर थे। और ईमानदारी से काम करने में ही हमारी मुक्ति और हमारी सभी आवश्यक जरूरतों की पूर्ति भरी है।”

गांधीजी का यह अन्तिम भाषण था। इसके दूसरे दिन की तारीख (३० जनवरी, १९४८) गांधीजी के जीवन की अन्तिम तिथि थी। उस दिन शाम को ५ बजकर १० मिनट पर जब प्रायना-स्थल पर आने लगे तो एक व्यक्ति ने उन्हें सामने से ही पिस्तौल की तीन गोलियां सीने पर चला दी और गांधीजी वहीं घराशायी हो गए। गिरने के समय उन्होंने नमस्कार करने के लिए दोनों हाथ जोड़े और उनके मुह से केवल ‘ह राम !’ की आवाज निकली।

इस प्रकार न केवल भारत बल्कि सारे विश्व में सत्य, अहिंसा और शान्ति का अभिनव संदेश देन तथा राजनीति में भी सत्य, अहिंसा और शान्ति के प्रयोगों को काम में लाने का अन्तिम प्रयोग करनेवाले गांधीजी हम सब से चल बसे।

